पशुओं की स्वास्थ्य रक्षा

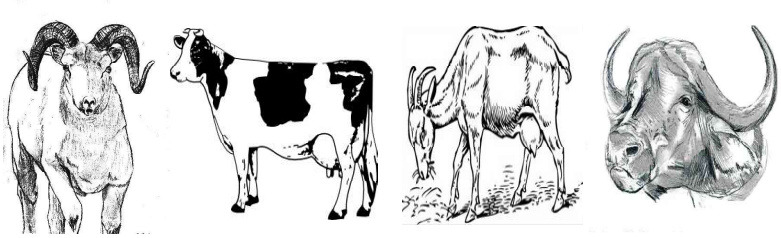

लेखक

डा. अजय कुमार उपाध्याय

प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष

पशु जन स्वास्थ्य एवं जानपादिक रोग विज्ञान विभाग

एवं

डा. मानसी

सहायक प्राध्यापक

पशु जन स्वास्थ्य एवं जानपादिक रोग विज्ञान विभाग

–कृषि प्रौद्योगिकी सूचना केन्द्र (एटिक)

गोविन्द बल्लभ पंत कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय

पंतनगर–263 145, जिला–ऊधम सिंह नगर

उत्तराखण्ड, (भारत)

पशुओं की स्वास्थ्य रक्षा

पुनरीक्षण	–	डा. पी.के. सिंह प्राध्यापक पशुधन उत्पादन प्रौद्योगिकी विभाग
सम्पादक एवं प्रकाशक	–	डा. बी.एस. कार्की प्राध्यापक सस्य विज्ञान एवं प्रभारी अधिकारी, एटिक
आवरण पृष्ठ सज्जा, टंकण एवं अक्षर संयोजक	–	श्री धर्मेन्द्र कुमार
मूल्य	–	₹40/- (चालीस रूपये मात्र) पंजीकृत डाक से मँगाने पर डाक खर्च, पैकिंग शुल्क ₹30/- अतिरिक्त

प्रथम संस्करण	:	वर्ष 2011	(प्रतियाँ 2,000)
द्वितीय संशोधित संस्करण	:	वर्ष 2013	(प्रतियाँ 5,000)
तृतीय संशोधित संस्करण	:	वर्ष 2021	(प्रतियाँ 3000)

मँगाने का पता :

प्रभारी अधिकारी
कृषि प्रौद्योगिकी सूचना केन्द्र (एटिक)
गोविन्द बल्लभ पंत कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय
पंतनगर, ऊधम सिंह नगर–263 145 (उत्तराखण्ड)
फोन नं. 05944–234810, 235580, फैक्स–05944–233473
मो. 7579174120 ई–मेलः aticgbpuat@gmail.com

सर्वाधिक सुरक्षितः

इस पुस्तिका में प्रकाशित लेख एवं विचार लेखक के निजी हैं। प्रकाशक/सम्पादक इसके लिए उत्तरदायी नहीं है। प्रकाशित लेख पाठकों के जानकारी के लिए हैं। इन लेखों का विधिक कार्यों में उपयोग उचित नहीं होगा।

नोटः यद्यपि इस पुस्तिका के मुद्रण में पूर्ण सतर्कता बरती गयी है, यदि कोई त्रुटि रह गयी हो या कोई सुझाव हो तो कृपया उपरोक्त पते पर भेजने का कष्ट करें। हम आपके आभारी रहेंगे।

प्राक्कथन

हमारे देश में आदि काल से ही कृषि एवं पशुपालन का चोली दामन का साथ रहा है। भारत में दो तिहाई से भी ज्यादा किसान लघु, सीमांत तथा अल्प आयधारक हैं जो पशुपालन एवं दुग्ध व्यवसाय कर स्वयं का भरण-पोषण करते हैं। पशुओं का उपयोग दूध, मांस, अण्डा, ऊन आदि की प्राप्ति के अलावा कृषि में शक्ति के स्त्रोत के रूप में भी होता है। इस प्रकार पशुपालन ग्रामीण अर्थव्यवस्था में प्रमुख स्थान रखता है। वर्तमान में अत्यधिक जनसंख्या दबाव, बढ़ती बेरोजगारी, खाद्य असुरक्षा तथा कृषि जोतों की घटती संख्या व सिकुड़ते आकार के कारण पशुपालन का महत्व और भी अधिक हो गया है।

पशुओं की स्वास्थ्य रक्षा पशुपालन का एक ऐसा पहलू है जो पशु की अपेक्षित उत्पादन क्षमता के दोहन में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। एक बीमार पशु अपनी क्षमता के अनुसार प्रदर्शन नहीं कर सकता है। पशु के स्वास्थ्य पर पर्याप्त ध्यान न देने व समय पर रोग निदान हेतु यथोचित उपाय न कर पाने से पशुपालकों को भारी नुकसान उठाना पड़ता है। अतः पशुपालकों को पशुओं में होने वाली सामान्य बीमारियों की जानकारी स्वयं होनी चाहिए जिसके आधार पर वे अपने पशु को प्राथमिक चिकित्सा प्रदान कर सकें।

पशुपालकों की इन समस्याओं को ध्यान में रखते हुए कृषि प्रौद्योगिकी सूचना केन्द्र (एटिक) द्वारा सरल एवं सुरूचिपूर्ण भाषा में **पशुओं की स्वास्थ्य रक्षा** नामक पुस्तिका का प्रकाशन किया गया है जिसमें पशुओं में होने वाले विभिन्न रोगों के घरेलू निदान से सम्बन्धित वैज्ञानिक ज्ञान को समिलित किया गया है। पशुपालकों के मांग को ध्यान में रखते हुए पुस्तिका का तृतीय संस्करण प्रकाशित किया जा रहा है। मैं पुस्तिका के लेखकों के साथ–साथ एटिक के प्रभारी अधिकारी व कर्मचारियों को इस प्रकाशन के लिए बधाई देता हूँ।

आशा है कि यह पुस्तिका पशुपालकों के साथ–साथ पशु प्रसार कर्मियों, विद्यार्थियों एवं पशु चिकित्सकों के लिए लाभदायक सिद्ध होगी।

(अनिल कुमार शर्मा)
निदेशक प्रसार शिक्षा

अनुक्रमणिका

क्र.सं.	विषय	पृष्ठ सं.
1.	रोगी पशु के लक्षण	1–2
2.	पशु स्वास्थ्य एवं रोग	3–6
3.	पशु स्वास्थ्य परीक्षण	7–10
4.	उपचार विधियाँ	11–14
5.	पाचन तन्त्र के रोग	15–26
6.	श्वसन तन्त्र के रोग	27–30
7.	उत्सर्जन तन्त्र के रोग व उपचार	31–32
8.	हृदय एवं रूधिर तन्त्र के रोग	33–37
9.	तन्त्रिका तन्त्र के रोग	38–42
10.	माँस पेशीय रोग	43–44
11.	हड्डियों एवं जोड़ों के रोग	45–47
12.	त्वचा सम्बन्धी रोग	48–53
13.	जनन तन्त्र के रोग	54–56
14.	उत्पादन सम्बन्धी रोग	57–60
15.	जीवाणु जनित रोग	61–68
16.	विषाणु जनित रोग	69–75
17.	परजीवी रोग	76–78
18.	एक कोशीय परजीवी रोग	79–81
19.	सामान्य विषाक्तितायें	82–87
20.	आपातकालीन रोग	88–91
21.	शिशु पशु रोग	92–93
22.	पशु रोगों का घरेलू उपचार	94–102
23.	रोगों से बचाव हेतु पशु बाड़े की सफाई	103–105
	कुछ आवश्यक जानकारियाँ	106
	जीवाणु जनित, विषाणु जनित एवं कवक जनित रोगों का होम्योपैथिक उपचार	107–112

1 रोगी पशु के लक्षण

मूक पशु जो अपनी व्यथा को व्यक्त नहीं कर सकते, उनमें रोग निदान एक पहेली को हल करने जैसा सुरूचिपूर्ण कार्य है तथा इसमें हर कर्मनिष्ठ तथा ईमानदार पशु सेवक को आनन्द की अनुभूति होती है। जहाँ पशुओं की विभिन्न प्रजातियाँ, रोग निदान की सीमित सुविधायें, उपचार का खर्च तथा पशु की कीमत जैसी कई बाधायें पशु सेवक के लिए रोग निदान को अत्यधिक कठिन कार्य बना देते हैं, वहीं अन्वेषक जैसा कार्य मजेदार भी होता है। किसी क्षेत्र में कोई बीमारी फैलने पर जरूरी है कि उसका रोग निदान यथार्थपूर्ण जल्दी से जल्दी किया जाना चाहिए जिससे अन्य जानवरों को उस बीमारी से ग्रसित होने से बचाया जा सके। रोग यदि मनुष्यों में फैलने वाला हो तो पशु सेवक की जिम्मेदारी और भी बढ़ जाती है। एक पशु सेवक को ऐसी ही कठिनाइयों के साथ अपना कार्य करना होता है तथा कीर्ति एवं प्रवीणता प्राप्त करने के लिए उसे पशु पालन के सभी आयामों का ज्ञान होना आवश्यक है। इसके साथ उसे निरीक्षण तथा व्याख्या में भी कुशल होना चाहिए। रोग को समझना तथा सटीक रोग निदान पशु स्वास्थ्य के लिए अत्यधिक आवश्यक है। पशु सेवक को चाहिए कि वह स्वस्थ पशुओं के प्राकृतिक व्यवहार का निरीक्षण करें तथा अस्वस्थ पशुओं से उसकी तुलना करें। पशु सेवक को रोग के प्रमुख लक्षण, रोग इतिहास तथा पशुओं की जांच के विभिन्न तरीकों को जानना व समझना अति आवश्यक है।

रोगी पशु के सामान्य लक्षण

बीमार पशु सुस्त दिखाई देता है, कम खाना खाता है या खाना पूर्णतः छोड़ भी सकता है। रोमंथी (Ruminant) पशुओं में जुगाली बन्द हो जाती है तथा दुधारू पशुओं में दुग्ध उत्पादन कम हो जाता है। इन लक्षणों के साथ यदि पशु को बुखार हो तो उसके थुथुन शुष्क हो जाते हैं, शरीर की सतह के बाल खड़े हो जाने के कारण त्वचा गर्म तथा खुरदरी हो जाती है। उसकी श्वास गर्म, मल सख्त या पतला, मूत्र कम तथा गहरे रंग का एवं श्वसनगति तीव्र हो जाती है। पशु की आँखें लाल तथा उनमें से अश्रु–प्रवाह भी हो सकता है। प्रत्येक पशु सेवक या पशुपालक के लिए रोगी पशु के उपचार से पूर्व पशु के सम्बन्ध में निम्न जानकारी होना आवश्यक है :

(क) जातिः कुछ बीमारियाँ जाति विशिष्ट में होती हैं जैसे पोंकनी, गलघोंटू

एवं दुग्ध ज्वर केवल रोमथी पशुओं में होते हैं। ग्लैन्डर एवं स्ट्रैंगल रोग केवल घोड़ों में ही होते हैं तथा डिस्टेम्पर, इन्फेक्सियस, हिपेटाइटिस आदि कुत्तों के रोग हैं।

(ख) नस्लः दुग्ध ज्वर, थनैला, कीटोसिस, अधिक दुग्ध उत्पादक नस्लों में ही होते हैं।

(ग) उम्रः लंगड़ी (ब्लैक क्वाटर) प्रायः कम उम्र के रोमंथी पशुओं में होता है, जबकि डिस्टेम्पर व रिकेट्स पिल्लों में ही होता है और क्षयरोग (ट्यूबरक्यूलोसिस) प्रायः बूढ़े जानवरों में पायी जाती है।

(घ) लिंगः थनैला, मेट्राइटिस तथा चयपचयी व प्रसव सम्बन्धित रोग मादा पशुओं में ही होते हैं।

विशेष अवस्थायें एवं पशु रोग

(क) कुछ परजीवी संक्रमण ऐसे क्षेत्रों में प्रचलित हैं जहाँ घने जंगल तथा अत्यधिक वर्षा के कारण पानी स्थिर रहता है। ऐसे क्षेत्रों में काटने वाले कीड़े तथा घोंघा आदि अधिक पाये जाते हैं जो रोग वाहक का कार्य करते हैं।

(ख) शहरी तथा प्रौद्योगिक क्षेत्रों में न पचने वाली कृत्रिम वस्तुएं जैसे कि प्लास्टिक आदि के कारण ट्रोमेटिक रेटिकुलाईटिस तथा अजीर्णता अधिक पायी जाती है।

(ग) रेबीज की सम्भावना उन कुत्तों में ज्यादा होती है जिन्हें घर से बाहर जाकर सड़क के अन्य कुत्तों से मिलने दिया जाता हैं।

(घ) कुछ क्षेत्रों में मृदा में विभिन्न तत्वों की कमी के कारण पोषण सम्बन्धी रोग हो जाते हैं (जैसे आयोडीन की कमी)।

(च) फ्लोरोसिस– मृदा तथा पानी में फ्लोरीन की अधिकता के कारण होता है।

❑❑❑

uksV

रोमंथीः गाय, भैस, भेड़, बकरी आदि पशुओं को मिलाकर बने वर्ग को रोमंथी वर्ग कहते हैं।

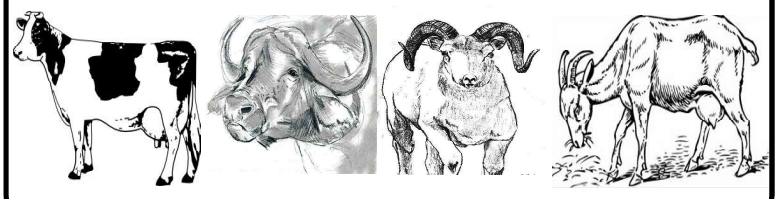

2 पशु स्वास्थ्य एवं रोग

एक कुशल पशु सेवी को स्वस्थ पशु एवं रोगी पशु में अन्तर मालूम होना चाहिए। स्वस्थ पशु की शारीरिक बनावट अच्छी होती है, तथा उसकी श्वसन, पाचन आदि प्रक्रियाएं ठीक प्रकार से होती हैं जिस कार्य हेतु उसका पालन किया जा रहा है (जैसे दूध हेतु या हल चलाने हेतु) वह उस कार्य को ठीक प्रकार से करता है। रोगी पशु की शरीर रचना बदल जाती है जैसे शरीर के किसी स्थान पर सूजन का आ जाना या किसी हड्डी का टूटना उसकी शरीर क्रिया अर्थात श्वसन दर या पाचन अभिक्रिया में बदलाव आ जाता है। यदि पशु को दूध हेतु पाला जा रहा है तो कम दूध देता है या हल चलाने हेतु पाला गया है तो वह थोड़ी ही देर में थक जाता है। इस प्रकार सेहतमंद से हटना ही पशु का रोगी होना है।

रोग के कारण (causes)

रोग किस कारण से हो रहा है यह जानना पशु सेवक के लिए परम आवश्यक है क्योंकि रोग के कारणों को जानकर ही वह पशु को शीघ्र स्वस्थ बना सकता है, अन्य पशुओं को रोगी होने से बचा सकता है तथा भविष्य में उसके पशु रोगी न हो, ऐसी व्यवस्था कर सकता है। चूँकि पशु रोगी होता है, वह एक विशेष वातावरण में रहता है तथा वातावरण में अनेक रोग कारक जैसे जीवाणु, विषाणु, कवक, परजीवी आदि भी रहते हैं, अतः रोग के मुख्यतः तीन कारक हो सकते हैं :

(क.) पशु

पशु जब किसी प्रकार के तनाव में हो या उसमें रोग रोधक क्षमता कम हो तो पशु के रोगी होने की सम्भावना होती है। पशु के रोग को समझते समय उसकी उम्र, लिंग, जाति तथा नस्ल आदि का विचार करने से रोग का सही निदान या पहचान कर सकते हैं। यदि नवजात शिशु को प्रथम आठ घण्टों में पर्याप्त मात्रा में खीस या पहला दूध पीने को न प्राप्त हो तो उसके शरीर में रोग रोधक क्षमता कम हो जाती है और वह रोगी हो जाता है। इसी प्रकार ठीक समय एवं सही मात्रा में यदि पशु को कुछ विशेष रोगों के रोग रोधी टीके न लग सके हों तो भी पशु के रोगी होने की सम्भावना बढ़ जाती है जैसे वर्षा से पूर्व गलाघोंटू रोग का टीका अवश्य लग जाना चाहिए। इसी प्रकार यदि पशु को एक स्थान से दूसरे दूरस्थ स्थान पर ले जा रहे हैं और पशु हेतु विटामिन का टीका, प्रति जैविक टीका, उचित आहार एवं स्वच्छ पानी की व्यवस्था न की गयी हो तो पशु के रोगी होने की सम्भावना बढ़ जाती है।

(ख.) वातावरण

पशु पालन में पशु के चारों ओर का वातावरण जैसे आवास, हवा, प्रकाश, पशु आवास की सफाई, अन्य पशुओं से दूरी, पशु आवास में पशु सघनता एवं मौसम इत्यादि का रोग होने में महत्वपूर्ण योगदान है। पशु आवास आसपास से ऊँची जगह पर होना चाहिए। मूत्र–गोबर एवं दूषित पानी के निकासी की उचित व्यवस्था होनी चाहिए एवं निरन्तर पीने हेतु स्वच्छ पानी उपलब्ध होना चाहिए। पशु आवास में पर्याप्त खिड़की–दरवाजे होने चाहिए। दिन में पशु हेतु खुला स्थान होना चाहिए एवं प्रातः–सायं उचित मात्रा में स्वच्छ आहार भी होना चाहिए। पशु को तेज धूप, ठण्ड एवं वर्षा से बचाव की व्यवस्था भी होनी चाहिए। वातावरण के अचानक बदलाव के समय पशु का विशेष ध्यान रखना चाहिए।

(ग.) रोग कारण

पशु के साथ–साथ पशु को रोगी करने वाले कारक भी एक कुशल पशु सेवक को ध्यान में रखने चाहिए जिससे वह पशु को स्वस्थ रख सके। रोग कारक मुख्यतया निम्नानुसार असंक्रामक तथा संक्रामक दो प्रकार के हो सकते हैः

(अ.) असंक्रामक रोग कारक

सभी रोग पशु सेवक की असावधानी व अल्पज्ञता के कारण ही होते है किन्तु असंक्रामक रोगों के होने में इनका बहुत महत्व है। सभी असंक्रामक रोग पशु शरीर की आवश्यकता के अनुरूप किसी पदार्थ की अनुचित मात्रा की उपलब्धता के कारण ही होते हैं। अतः असंक्रामक रोगों को अल्पता तथा अधिकता या विषाक्तता दो श्रेणियों में विभक्त कर सकते हैं।

1. अल्पता जनित रोग

कैल्शियम, फॉस्फोरस, मैग्नीशियम व जिंक आदि खनिज लवण एक विशेष मात्रा में शरीर के लिए आवश्यक होते हैं। यदि इनकी आहार में उपलब्धता आवश्यक मात्रा से कम हो तो इन विशेष तत्वों की अल्पता पशु को रोगी बना देती है। जैसे कैल्शियम की कमी से हड्डियों का कमजोर होना तथा दूध उत्पादन कम होना, लौह तत्व की कमी से रक्त हीनता तथा आयोडीन की कमी से पशु का गर्भित न होना या घेंघा रोग होना इत्यादि। इसी प्रकार अनेक उत्पादन सम्बन्धी रोग जैसे दुग्ध ज्वर, किटोसिस इत्यादि भी क्रमशः खनिज मिश्रण विशेषतः कैल्शियम तथा शर्करायुक्त दाने की कमी से होते हैं।

2. अधिकता या विषाक्तता

जिस प्रकार कुछ तत्व की कमी रोग उत्पन्न करती है, उसी प्रकार

आवश्यकता से अधिक मात्रा भी रोग कारक हैं। पशुओं में सामान्यतया हाइड्रोसाइनिक अम्ल, नाइट्रेट–नाइट्राइट, ऑर्गेनोफॉस्फोरस, ऑर्गेनोक्लोरीन तथा यूरिया की विषाक्तता दुर्घटनावश हो जाया करती है। पशु सेवक सावधानी बरतकर इन विषाक्तताओं से पशु को बचा सकता है।

(ब.) संक्रामक रोग

सूक्ष्मजीव जैसे विषाणु, जीवाणु, कवक तथा विभिन्न प्रकार के परजीवी एक अस्वस्थ पशु से स्वस्थ पशु में प्रवेश करते हैं और स्वस्थ पशु को रोगी बना देते हैं, ऐसे रोगों को संक्रामक या छूत के द्वारा होने वाले रोग कहते हैं। छूत, प्रायः रोगी पशु को स्वस्थ पशु छू दे तो होती है या श्वसन क्रिया के समय सूक्ष्मजीवी के स्वस्थ पशु में प्रवेश करने पर रोग हो जाता है। अधिकांशतः तो दूषित आहार और पानी पीने से पशु रोगी हो जाते हैं। कभी–कभी गर्भाधान के समय नर से मादा या मादा से नर में रोगकारक प्रवेश करता है और कभी टीके लगाते समय या ग्लूकोस अथवा रक्त चढ़ाते समय। कुछ रोग तो पशु के अस्पताल में अधिक देर तक रूकने के कारण भी होते हैं क्योंकि अस्पताल में अनेक प्रकार के रोगाणु होते हैं जो पशु शरीर में प्रवेश कर पशु को रोगी बना देते हैं।

इसके अतिरिक्त विभिन्न रोगों को उनकी उत्पत्ति के आधार पर निम्नानुसार वशांनुगत, जन्मजात तथा प्राप्य रोगों में भी वर्गीकृत कर सकते हैं:

(अ.) वंशानुगत रोग

कुछ रोग माता–पिता से संतान में अंडाणु या शुक्राणु के माध्यम से आते हैं, ऐसे रोग वंशानुगत रोग कहलाते हैं। वस्तुतः इस प्रकार के रोग कोशिकाओं में पाये जाने वाले क्रोमोसोम के माध्यम से संतति में पहुँचते हैं, जैसे–हिमोफिलिया।

(ब.) जन्मजात रोग

मादा के गर्भाशय में भ्रूण अवस्था के विकास की अवस्थाओं में ही पैदा होने वाले शिशु में यदि कोई रोग हो जाये तो ऐसे रोगों को जन्मजात रोग कहते हैं। प्रायः ऐसे शिशु या तो जन्म के बाद मर जाते हैं या कुछ अवधि जीने के बाद मृत्यु को प्राप्त होते हैं। उदाहरण के लिए संक्रामक गर्भपात नामक रोग में नवजात शिशु को न्यूमोनिया होता है और उसकी मृत्यु हो जाती है।

(स.) प्राप्य रोग

ऐसे रोग जो पशु में जन्म के बाद किसी भी अवस्था में विभिन्न वाह्य कारणों से होते हैं, उन्हे प्राप्य रोग (Aquired Disease) कहते हैं। सभी प्रकार के संक्रामक एवं असंक्रामक रोग प्राप्य रोग की श्रेणी में आते हैं, जैसे गलाघोंटू या दुग्ध ज्वर आदि।

पशु रोगो को पशु शरीर के विभिन्न अंगों को प्रभावित करने के आधार पर निम्नानुसार सीमित रोग तथा वृहद रोग में बाँट सकते हैं:

(अ.) सीमित रोग

रोग जब किसी एक अंग या तन्त्र को प्रभावित करता हो तो वह सीमित रोग कहलाता है, जैसे न्यूमोनिया श्वसन तन्त्र का रोग है तथा अफारा पाचन तन्त्र का रोग है।

(ब.) बृहद रोग

सम्पूर्ण शरीर को या एक से अधिक तन्त्रों को प्रभावित करने वाले रोग को वृहद रोग कहते हैं, जैसे पोंकनी रोग।

रोगों को लक्षणों की तीव्रता के आधार पर अति तीव्र, मध्यम तथा धीमे प्रकार के रोगों में विभाजित कर सकते है।

(अ.) अति तीव्र रोग (Peracute)

रोग के लक्षण पशु सेवक को समझ में आये उससे पूर्व ही पशु की अचानक मृत्यु हो जाय तो ऐसे रोग अति तीव्र कहलाएंगे जैसे तिल्ली रोग (Anthrax)। इस प्रकार के रोगों में लक्षण कुछ मिनट से लेकर कुछ घण्टे ही रहते हैं और पशु की मृत्यु भी हो जाती है।

(ब.) तीव्र रोग (Acute)

गम्भीर प्रकार का रोग अचानक होता है और रोग अवधि प्रायः 3–7 दिन तक रहती है। रोग के लक्षण स्पष्ट होते ही बड़ी संख्या में पशुओं की मृत्यु भी हो जाती है, जैसे–गलाघोंटू रोग।

(स.) मध्यम रोग (Subacute)

पशु इस प्रकार के रोग में एक सप्ताह से अधिक अवधि तक प्रभावित रहता है। रोग के लक्षण पहचान में आते है और पशु धीरे–धीरे स्वस्थ हो जाता है, जैसे–मध्यम प्रकार का थनैला।

(द.) धीमे प्रकार का रोग (Chronic)

पशु लम्बी अवधि तक कम तीव्रता के लक्षणों के साथ रोगी रहता है, जैसे यक्ष्मा रोग (Tuberculosis)।

❑❑❑

3 पशु स्वास्थ्य परीक्षण

सटीक रोग निदान, उपचार एवं रोगों से बचाव को अधिक कारगर बनाने के लिए निम्न अनुभव जनित प्रणाली अपनाने से पशु सेवक श्रेष्ठता को प्राप्त कर सकता है:

(अ) रोग का इतिहास– पशु तथा उसके रोग से सम्बन्धित सम्पूर्ण क्रमवार जानकारी ही यर्थाथ रोग निदान की दिशा में पहला कदम है।

(ब) पिछला इतिहास– किसी पिछली बीमारी की सूचना तथा उसका वर्तमान रोग से सम्बन्ध के बारे में सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त करने को पिछले इतिहास की जानकारी कहते हैं।

उदाहरण:

1. पशु का अधिक दिनों तक गाभिन न होना।
2. गर्भाशय के प्रवाह के कारण प्रजनन सम्बन्धी परेशानियाँ।
3. डिस्टेम्पर के बाद कुत्तों का मानसिक व्यग्रता से प्रभावित हो जाना।
4. दुधारू पशुओं का बार–बार चारा छोड़ देना।

इन बातों की जानकारी पशु रोग उपचार में अत्यन्त सहायक होती है।

श्लेष्मायुक्त झिल्ली का परीक्षण

श्लेष्मायुक्त झिल्ली का परीक्षण रोग एवं रोग की स्थिति का पता लगाने में अत्यधिक सहायक है। रोग के उपचार में होने वाले लाभ की स्थिति का अनुमान भी उचित समयान्तराल पर श्लेष्मायुक्त झिल्ली का परीक्षण करके किया जा सकता है। यह परीक्षण आँख की भीतरी भाग की झिल्ली (कंज्क्टाईवा), मुँह तथा नाक की श्लेष्मा तथा मादाओं में जननांगों के भीतरी सतह को ध्यान से देखकर किया जाता है। परीक्षण तेज प्राकृतिक रोशनी में ही किया जाना चाहिए। स्वस्थ पशुओं में श्लेष्मा नम तथा गुलाबी रंग की होती है। यह प्रायः निम्न प्रकार की हो सकती है:

- **किसी अंग का अधिक रक्तिम (कन्जेशन):** यह बुखार तथा दाह का लक्षण है।
- **पीलापन/फीकापन:** यह रक्तहीनता, आन्तरिक रक्त वाहिनियों में रक्त का स्राव तथा आवेगकारी प्रभाव (shock) का लक्षण है।
- **पीला पड़ जाना:** पीलिया तथा जिगर की अन्य बीमारियों का यह लक्षण है।

- **नीला पड़ जाना :** ऑक्सीजन की कमी से सायनोसिस तथा हायपोक्सिया में ऐसा हो जाता है।
- **गुलाबी हो जाना:** विशेष रोगों में जैसे घोड़ों में रक्तहीनता में ऐसा होता है।
- **नासूर बन जाना:** मुँह की श्लेष्मा पर नासूर–पोंकनी, मुँहपका–खुरपका, म्यूकोजल बीमारी तथा घोड़ों की ग्लैंडर नामक बीमारी में पाया जाता है।

आँखों का परीक्षण

- **धंसी हुई आँखें:** यह पुरानी बीमारी जैसे क्षय रोग तथा जल की कमी का लक्षण है।
- **आँख की पुतली का आवेग:** आँख की पुतली का आवेगकारी प्रभाव, विषैला रूधिर होने तथा नाड़ीमण्डल के रोगों के कारण होता है और इससे आँख प्रकाश को अनुभव नहीं कर पाती है।
- **आँख का अल्सर:** यह चोट लगने के कारण या फिर कुछ बीमारियाँ जैसे कुत्तों में डिस्टेम्पर आदि में हो जाता हैं।
- **तीसरी पलक का प्रलम्बन:** यह घोड़ों में टिटेनस का एक महत्वपूर्ण लक्षण है।

शरीर का बाहरी सतह तथा त्वचा का परीक्षण

बाहरी त्वचा से शरीर के तापमान का अंदाजा लगाया जा सकता है। सामान्य चमक, त्वचा का लचीलापन, सूजन, त्वचा के रोग, बालों का गिरना, त्वचा का रंग खोना आदि का निरीक्षण शरीर की बाहरी सतह तथा त्वचा के परीक्षण द्वारा करना चाहिए। शरीर में पानी की कमी का पता त्वचा की एक ढीली परत को खींचकर लगाया जा सकता है। ऐसे परीक्षण रोग की सटीक जानकारी में सहायक होते हैं और उपचार को आसान बना देते हैं।

पशु परीक्षण विधि

1. निरीक्षण: पशुओं के स्वास्थ्य एवं रोग की स्थिति के आंकलन हेतु हम कुछ प्रचलित विधियों का उपयोग कर सकते हैं। इन परीक्षण विधियों द्वारा हम पशु स्वास्थ्य की सटीक जानकारी प्राप्त कर पशु पालन व्यवसाय को अधिक लाभकारी बना सकते हैं। तजुर्बेकार पशु सेवक, रोगी पशु को देखकर ही महत्वपूर्ण निरीक्षण कर सकता है तथा रोग का अनुमान लगा सकता है। रोगी पशु के सामान्य लक्षणों की पहचान हम पशु का सामान्य निरीक्षण करके ही करते हैं। सामान्य निरीक्षण पशु जब खड़ा हो तभी करें

या पशु को किसी प्रकार खड़ा करके करना चाहिए। पशु का लगभग 1.5 मीटर की दूरी से सिर से पूँछ तक ठीक प्रकार निरीक्षण करना चाहिए। पशु को चलाकर देखने, खड़े होने की विधि आदि से कई रोगों का पता चल जाता है।

2. स्पर्शगोचनः स्पर्शगोचन अथवा किसी भाग को हाथों से दबाने या सहलाने से पशु सेवक उस विशेष अंग अथवा ऊतक की रचना की दृढ़ता, दाह, दर्द, ठण्डा, दर्दरहित, फूला अथवा फैला हुआ (अफरा) या फिर सूखा–कठोर खाना (आहार नाल में अवरोध) या पानी, कड़कड़ाने वाली सूजन (लंगड़िया रोग) की पहचान कर सकता है। पेट की गति का पता स्पर्शगोचन तथा बड़े पशुओं में गुदा स्पर्शगोचन द्वारा गर्भ अवस्था का पता कर सकते हैं। पशुओं में गम्भीर स्पर्शगोचन द्वारा उदर की गाँठ, गर्भाशय, आंत का प्रतिबंध का पता भी लगाया जा सकता है। यदि स्पर्शगोचन किया गया हिस्सा सामान्य से अधिक हड्डी जैसा कठोर है तो हड्डी बढ़ी हो सकती है, जैसे एक्टिनोमाइकोसिस में जबड़े की हड्डी बढ़ जाती है। यदि कठोरता मांसपेशी जैसी है तो कोई फोड़ा या ट्यूमर की सूजन हो सकती है। गीले आटे जैसी है तो वहाँ पानी भरा हो सकता है। पुट्ठों पर स्पर्श करने पर यदि मांस में हवा एक स्थान से दूसरे स्थान पर हट रही हो तो लगड़ी रोग हो सकता है।

3. प्रतिघात (Percussion): शरीर के किसी भाग पर उंगलियों से मारने या फिर प्लैक्सर (एक रबड़ की हथौड़ी) तथा प्लैक्सीमीटर (लकड़ी की प्लेट) से उस सतह के नीचे पड़े अंग पर थर्राहट जगाकर उसके द्वारा उत्पन्न ध्वनियों को सुनकर पशु सेवक किसी अंग की सघनता तथा क्रिया का अंदाजा लगा सकता है। जैसे कोख पर थपथपाने से ढोलक जैसा प्रतीत हो तो पशु को अफरा हो सकता है।

4. शरीर के भीतर की ध्वनियों को सुनना (Auscultation): एक यन्त्र स्टेथोस्कोप (Stethoscope) की मदद से शरीर के अति आवश्यक अंगों की सामान्य ध्वनियों को सुनना परीक्षण की एक महत्वपूर्ण विधि है। यह प्रणाली कुशल पशु चिकित्सक ही उपयोग में लाते हैं। इसमें प्रवीणता के लिए काफी अभ्यास की आवश्यकता है। इसका उपयोग पेट (रूमन) तथा आंतो में उत्पन्न हुई ध्वनि को सुनने के लिए, श्वसन नली, हृदय, फेफड़ों की कार्य अवस्था आदि को सुनने में किया जाता है। एक कुशल परीक्षक द्वारा फेफड़े तथा हृदय सम्बन्धी रोगों का निदान इस विधि से किया जा सकता है। यह विधि छोटे पशुओं में अधिक लाभदायी है। इसके लिए अंग के घेरे

की सम्बन्धित ध्वनियों जैसे त्वचा के हिलने से उत्पन्न हुई ध्वनियों तथा बालों से रगड़ने की ध्वनियों को अलग करना अति आवश्यक है। इस विधि के उपयोग के समय पशु सही प्रकार से स्थिर एवं शांत होना चाहिए। लंबे बालों वाले पशुओं में बालों से उत्पन्न हुई ध्वनियों को अलग करने के लिए उनकी सतह को भिगो लेना चाहिये। इसके लिए अंगों की वास्तविक स्थिति का सम्पूर्ण ज्ञान होना अति आवश्यक है।

5. निदान की अन्य सहायक विधियाँ: उक्त विधियों के अलावा विभिन्न विशेष विधियां, रोग निदान के प्रमाणीकरण के लिए प्रयुक्त की जाती हैं। जैसे एक्स–रे परीक्षण, गोबर परीक्षण, मूत्र व दुग्ध का परीक्षण, सूक्ष्म जीव परीक्षण तथा अन्य निदान परीक्षण जैसे ई.सी.जी. छोटे पशुओं में काफी लाभदायी सिद्ध हुए हैं। परन्तु इन विधियों के लिए भी कुशल तकनीकी ज्ञान की आवश्यकता होती है।

पशु निरीक्षण परिणाम आंकलन

अवस्थाओं पर सतर्क विचार विमर्श, रोग के इतिहास की जानकारी व सामान्य निरीक्षण के उपरांत एक पशु सेवक यह पता लगा सकता है कि पशु का रोग स्पर्श से फैलता है या नहीं तथा रोगी का कौन सा तंत्र ग्रसित है। इसलिए इसके बाद सभी तंत्रों का एक–एक करके परीक्षण किया जाता है जिससे उचित उपचार किया जा सके तथा अन्य पशुओं को रोगी होने से बचाया जा सके।

❑❑❑

4 उपचार विधियाँ

पशु रोगों के उपचार में दवाओं का चुनाव करते समय, पशु के रोग की गम्भीरता के साथ–साथ, पशु का आर्थिक महत्व, उपचार का खर्च, पशुपालक की आर्थिक स्थिति तथा उपचार का उद्देश्य आदि पर भी ध्यान रखना चाहिए। अधिक गम्भीर रोगों में उपचार शीघ्र प्रारम्भ कर देना चाहिए तथा उपचार की निरन्तरता बनाए रखनी चाहिए। पशु को उपचार से होने वाले हानि–लाभ का अनुमान लगाते हुए उपचार की दवाओं तथा मात्रा में परिवर्तन भी किया जाता है, जबकि कई साधारण रोगों में प्रतिदिन या दिन में दो बार दवा देकर उसका परिणाम आंकलन करते हैं। उपचार में पशु के आर्थिक महत्व पर भी ध्यान दिया जाता है।

दुधारू पशु तथा दौड़ में उपयोग आने वाले घोड़ों का उपचार अलग तरीके से तथा बैल, खच्चर या दूध न देने वाले पशु का उपचार भिन्न होता है। उदाहरण के लिए दूध देने वाली गाय में अतः कृमिनाशक दवा देने से पूर्व यकृत का टॉनिक भी देते हैं जिससे दूध उत्पादन कम न होने पाये, जबकि दूध न देने वाले पशु में यकृत के टॉनिक का प्रयोग नहीं भी किया जा सकता है। पशु के उपचार का खर्च यदि पशु की कीमत से ज्यादा या बराबर हो जाये तो भी पशु पालक पशु का उपचार कराने में अरूचि रखते हैं। अतः उपचार का खर्च पशु की स्थिति को देखते हुए नियन्त्रित करना चाहिए। पशु पालक की आर्थिक स्थिति को भी उपचार के समय दवाओं के चुनाव में ध्यान में रखना चाहिए क्योंकि कुछ पशुपालक आर्थिक रूप से इतने कमजोर होते हैं, कि महंगी दवाओं का खर्च निर्वहन नहीं कर सकते हैं। इसी प्रकार रोग के उपचार एवं रोग के बचाव हेतु अलग प्रकार की दवाओं का चुनाव किया जाता है।

उपचार के प्रकार

रोगी पशु का उपचार भी अनेक प्रकार से किया जाता है। रोग की वास्तविक दवाओं के साथ ही लक्षण के आधार पर, शरीर में उत्पन्न कर्मियों एवं आहार आदि के आधार पर भी पशु को उपचारित कर सकते हैं। अतः पशु उपचार के निम्न प्रकार हो सकते हैः

अ. सामान्य उपचार : इस प्रकार के उपचार में पशु में रोग के कारण उत्पन्न कमजोरी का टॉनिक देकर, उल्टी–दस्त के कारण उत्पन्न पानी की कमी को पर्याप्त मात्रा में नार्मल सैलाइन चढ़ाकर, चोट आदि के कारण उत्पन्न सूजन की सिंकाई करके या व्यायाम द्वारा तथा पौष्टिक व संतुलित

आहार का आवश्यकतानुसार प्रयोग करके रोग को दूर किया जाता है।

ब. विशेष उपचारः रोग के वास्तविक कारण को ठीक से पता लगाकर तथा रोग से हुए नुकसान का सही अनुमान लगाकर जो उपचार किया जाता है उसे विशेष उपचार कहते हैं। उदाहरण के लिए यदि पशु को बबेशिया नामक रक्त परजीवी का संक्रमण हुआ है तो सर्वप्रथम उचित मात्रा में बबेशिया नाशक दवा का प्रयोग करना होगा, तत्पश्चात शरीर में हुई रक्तहीनता को दूर करने हेतु रक्तवर्धक तथा अन्य कमजोरी हेतु विटामिन, मिनरल इत्यादि का प्रयोग करना होता है।

स. लक्षण आधारित उपचारः पशु चिकित्सा में कई बार रोग कारक का सही पता नहीं लगाया जा सकता है, ऐसी परिस्थिति में लक्षण के आधार पर ही पशु रोग का उपचार किया जाता है। उदाहरण के लिए पशु को कब्ज की शिकायत है जबकि रोग का इतिहास, आहार का प्रकार एवं गोबर की जांच आदि कोई निश्चित कारण की पहचान करने में सहायता प्रदान नहीं कर रहे हैं तो पशु को उचित मात्रा में तेल आदि पिलाकर कब्ज ठीक किया जाता है।

द. रोग बचाव हेतु उपचारः यदि आसपास के पशुओं में किसी विशेष रोग के लक्षण प्रदर्शित हो रहे हैं तो पशुपालक विभिन्न दवाओं के प्रयोग से अपने पशु को उस विशेष रोग से बचाते हैं। जैसे अन्य पशुओं में यदि थिलेरिया नामक रोग हुआ है तो शेष पशुओं में टेट्रासाइक्लिन नामक औषधि का प्रयोग किया जाता है।

दवाओं के प्रकार

दवाओं को पशुपालक की सुविधा हेतु उनके उपयोग के आधार पर वर्गीकृत किया जा सकता है। सभी प्रकार की दवाओं को दो भागों में बाँट सकते हैं। प्रथम तो जो शरीर में हुई किसी कमी को दूर करती है, जैसे कैल्शियम खनिज तत्व की कमी को दूर करने हेतु कैल्शियम टॉनिक, तन्त्रिका तन्त्र को पुष्ट करने हेतु विटामिन–बी समूह के विटामिन तथा रक्तहीनता को दूर करने हेतु लौह तत्व टॉनिक आदि। दूसरे प्रकार की दवायें सीधे रोग कारक पर असर करती हैं, जैसे प्रतिजैविक औषधि, कृमिनाशक औषधियाँ तथा वाह्य परजीवी नाशक औषधियाँ इत्यादि। इसके अतिरिक्त औषधियों को शरीर के विभिन्न तन्त्रों पर उपयोग के आधार पर निम्न वर्गो में भी वर्गीकृत कर सकते हैं :

1. तन्त्रिका तन्त्र पर कार्य करने वाली औषधियाँः ऐसी औषधियाँ तन्त्रिका (स्नायु) तन्त्र के कार्य को प्रभावित करती हैं। इस प्रकार की औषधियाँ या तो पूरे शरीर को उत्तेजित कर सकती हैं, जैसे विटामिन–बी वर्ग की औषधियाँ या सुस्त कर सकती है, जैसे सिक्विल या क्लोरोफार्म। रोग की प्रकृति के अनुसार इनका प्रयोग लाभकारी होता है।

2. अंतःश्रावी ग्रन्थियों पर कार्य करने वाली औषधियाँ: जब कोई अंतःश्रावी ग्रन्थि आवश्यकता से कम कार्य कर रही होती है तो उसे उत्तेजित करने वाली औषधि का प्रयोग करते हैं। उदाहरण के लिए घेंघा (Goiter) रोग में थाइराइड नामक ग्रन्थि कम कार्य करती है, अतः आयोडीन आहार में देकर इस ग्रन्थि के कार्य को ठीक किया जा सकता है। इसी प्रकार जब कोई ग्रन्थि आवश्यकता से अधिक कार्य करती है तो उसकी गति को मन्द करने वाली औषधि का प्रयोग करते हैं, जैसे इस्ट्रोजन नामक हारमोन यदि ओवरी (Overy) में ज्यादा बन रहा हो तो क्लोमिफेन (Clomiphene) नामक औषधि सीधे हाइपोथैलेमस पर कार्य कर ओवरी द्वारा इस्ट्रोजन का बनना बन्द कर देते हैं।

3. पाचन तन्त्र पर कार्य करने वाली औषधियाँ: पाचन एक जटिल प्रणाली है। यह अनेक प्रक्रियाओं के संयोजन से सम्पन्न होती है। कुल रोगों में लगभग 70 प्रतिशत रोग पाचन तन्त्र के विकार के कारण उत्पन्न होते हैं। अतः इस तन्त्र की प्रणाली को प्रभावित करने वाली औषधियाँ भी अनेक हैं, जैसे भूख बढ़ाने हेतु हम नक्स वोमिका या जिंक क्लोराइड इत्यादि का प्रयोग कर सकते हैं, जबकि भूख कम करने हेतु एम्फेटामीन जैसे बेन्जाफेरामीन या फेनफ्लुरामीन नामक औषधि का प्रयाग करते हैं।

4. श्वसन तन्त्र पर कार्य करने वाली औषधियाँ: श्वसन तन्त्र में होने वाले विकार जैसे कफ बनना, श्वसन नली का सिकुड़ना, श्वसन गति का कम या तेज होना या श्वसन नली में सूजन होना आदि उत्पन्न हो सकते हैं। इन व्याधियों के अनुरूप ही औषधि होती है, जैसे मारफीन सल्फेट जो श्वसन गति कम करती है या पोटेशियम आयोडाइड, जो श्वसन तन्त्र का श्राव बढ़ाती है।

5. रूधिर तन्त्र पर कार्य करने वाली औषधियाँ: रूधिर तन्त्र, हृदय तथा संवाहिकाओं (धमनी एवं शिरा) से मिलकर बनता है। अनेक औषधियाँ हृदय की गति को बढ़ा सकती हैं जैसे डिजिटॉक्सिन और कुछ कम कर सकती हैं, जैसे–लिडोकेन या प्रोपेनोलाल। कुछ संवाहिकाओं को चौड़ा कर सकती हैं, जैसे नाइट्रोग्लिसीन, तो कुछ उन्हे सिकुड़ (Constrict) सकती हैं, जैसे सेरालेसिन एसिटेट (Saralasin acetate) या एड्रिनेलीन (Adrinalin)। कुछ दवायें खून का थक्का बना सकती हैं, जैसे फिटकरी तथा विटामिन–के (Vitamin-K), जबकि अन्य जैसे हिपेरिन या सोडियम साइट्रेट थक्का बनना रोक सकती हैं। इसी प्रकार कुछ खून बनना बढ़ा सकती हैं, जैसे फोलिक एसिड, तो कुछ कम कर सकती हैं, जैसे प्रोलीन।

6. उत्सर्जन तन्त्र पर कार्य करने वाली औषधियाँ: उत्सर्जन तन्त्र का कार्य है शरीर की क्रियाओं में उत्पन्न अनावश्यक तथा हानिकारक पदार्थों

को शरीर से बाहर निकालना। यह कार्य सबसे अधिक पेशाब तथा मल द्वारा होता है। मल पाचन तन्त्र द्वारा नियन्त्रित होता है और पेशाब उत्सर्जन तंत्र के अधीन आता है। पेशाब कम बन रहा हो तो मैनीटॉल या फ्युरेसामाइड आदि देकर बढ़ाया जा सकता है। इसी प्रकार यदि पेशाब का पी.एच. अम्लीय हो तो अमोनियम क्लोराइड और यदि क्षारीय हो तो हैक्साजीन देकर ठीक किया जा सकता है।

7. प्रजनन तन्त्र पर कार्य करने वाली औषधियाँ: पशुओं में प्रजनन सम्बन्धी अनेक व्याधियाँ होती हैं जिनमें गर्मी में न आना तथा गर्भित न होना मुख्य हैं। यद्यपि गर्मी में न आने के अनेक कारण हैं, जिसमें पोषण मुख्य किन्तु कुछ आयुर्वेदिक औषधियाँ जनोवा या प्रजना आदि का प्रयोग कर पशु को गर्मी में लाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त इस्ट्रोजन हारमोन या टेस्टोस्टेरान हारमोन का प्रयोग भी पशु के सम्बन्धित रोगों को दूर करने हेतु किया जाता है।

8. त्वचा रोगों पर कार्य करने वाली औषधियाँ: त्वचा पर प्रायः खाज–खुजली जैसे रोग होते हैं इन्हें ल्युगाल्स आयोडीन, जेन्सन वायलेट आदि से उपचारित करते हैं, इसके अतिरिक्त घाव शीघ्रता से ठीक होने हेतु जिंक स्टीरेट या जिंक आक्साइड आदि का प्रयोग करते हैं।

9. कैंसर पर कार्य करने वाली औषधियाँ: कैंसर शरीर के किसी भी भाग में हो सकता है। कैंसर के प्रकार के आधार पर अनेक कैंसर रोधी औषधियाँ हैं, जैसे फेफड़े या स्तन के कैंसर में साइक्लोफॉस्फामाइड (Cyclophosphamide) का उपयोग होता है तथा हड्डियों के कैंसर में डॉक्सोरूबिसिन (Doxorubicin) का उपयोग होता है।

10. सूक्ष्मजीव नाशक औषधियाँ: सूक्ष्मजीव जैसे विषाणु, जीवाणु, कवक एवं परजीवियों के संक्रमण का उपचार करने हेतु विशेष प्रकार के सूक्ष्मजीव नाशक औषधियों का प्रयोग करना होता है। जैसे विषाणु नाशक हेतु रिबेविरिन (Ribavirin) या एमेन्टाडीन (Amantadine) आदि का उपयोग करते हैं। जीवाणु रोग में टेरामाइसिन (Terramycine) या पेनीसिलिन (Penicillin) का प्रयोग करते हैं। कवकजनित रोगों में ग्रेशियोफलविन (Griseofulvin) या निस्टेटिन (Nystatin) का प्रयोग करते हैं तथा परजीवी रोग में लिवेमिसॉल (Levamisole) या एलबेन्डाजोल (Albendazole) प्रयोग करते हैं। इस प्रकार अनेकानेक औषधियाँ लगभग सभी प्रकार के रोगों को उपचारित करती हैं। यदि रोगों के कारण का सही निदान हो और समय पर रोगों की पहचान हो तो लगभग सभी रोगों को ठीक किया जा सकता है। विशेष परिस्थितियों में स्वयं उपचार करने से बचें, नजदीकी डॉक्टर से सम्पर्क करें।

❑❑❑

5 पाचन तन्त्र के रोग

पशुओं को सर्वाधिक पाचन तंत्र सम्बन्धी रोग ही प्रभावित करते हैं। प्रायः साधारण प्रकार के पाचन विकार पशुपालक स्वयं ही अनुभव जनित ज्ञान से उपचारित कर लेता है, परन्तु अनेक रोगों के उपचार हेतु कुशल पशु सेवक की आवश्यकता होती है। पशुओं के सभी प्रकार के रोगों में पाचन विकार का लगभग 70 प्रतिशत योगदान होता है। अतः इनका शीघ्र निदान कर उत्पादकता को प्रभावित होने से बचाया जा सकता है।

परीक्षण

रोगी पशु को देखते ही सर्वप्रथम ध्यान आहार एवं दाना पर जाता है। आहार की उचित मात्रा इत्यादि की जानकारी के साथ ही चारे में किये गये परिवर्तन, कोई अन्य अतिरिक्त आहार, कीटनाशक का पशुशाला अथवा चारे पर छिड़काव की जानकारी, रोग निदान में सहायक हो सकती है। रोग का सम्पूर्ण इतिहास पूर्व में किये गये उपचार तथा वातावरण की जानकारी निदान को दिशा प्रदान कर सकती हैं।

पशु के पेट का स्पर्शगोचन (Palpation), प्रतिघात (Percussion) तथा पेट व आंतों द्वारा उत्पन्न भीतरी ध्वनियों का सुनना (Auscultation) भी रोग निदान में सहायता प्रदान करता है। स्पर्शगोचन तथा प्रतिघात से पाचन में सहायता करने वाले यकृत (liver) की अवस्था की जानकारी प्राप्त कर सकते हैं, जैसे कि इसका आकार बढ़ा है या सूजन है। यह पीलिया का भी निदान करने में सहायता प्रदान करते हैं। पीलिया में पाचन खराब होने के साथ ही आँख के अन्दर की त्वचा पीली हो जाती है। पाचन तन्त्र के विकार की अवस्था की जानकारी में गोबर की जाँच भी सहायक होती है। यह पाचन तंत्र के विभिन्न भागों में उपस्थित कीड़ों आदि के निदान के लिए आवश्यक है। इनका निदान सूक्ष्मदर्शी की सहायता से कीड़ों के अण्डों आदि को पहचान कर करते हैं।

पेट का पानी (Rumen) सुई की सहायता से निकालकर उसके पी.एच. (PH) की मात्रा का पता लगाकर भी पाचनतन्त्र के रोगों की पहचान होती है। यदि पी.एच.–7 से अधिक है तो क्षारीय अपच (Alkaline indigestion) और यदि 6 से कम है तो अम्लीय अपच (Acid indigestion) को इंगित करता है। क्षारीय अपच में सिरका या नींबू का रस आदि तथा अम्लीय अपच में खाने वाला सोडा का घोल बनाकर पिलाने से लाभ होता है।

यदि पशु ने न खाने योग्य पदार्थ जैसे पॉलीथीन आदि खा लिया है तो इसका निदान अत्यन्त कठिन हो जाता है। किसी परिणाम पर पहुँचने से पूर्व यह भी ध्यान देना चाहिए कि पशु को अन्य रोगों के कारण अधिक समय से बुखार तो नहीं है या खून की कमी हो गयी है या खनिज पदार्थो की कमी हो गयी हो या किसी जहरीले पदार्थ को खा लिया है। यदि ऐसा है तो इन्हें ही ठीक करने से पाचन सम्बन्धी रोग स्वयं ही ठीक हो जाते हैं। कभी–कभी अतः कृमियों की अधिकता से भी पाचन विकार होते हैं, इनका उपचार अंतः कृमिनाशक दवा देकर किया जा सकता है।

पाचन तन्त्र के प्रमुख रोग

1. मुंहपकाः पशुओं का मुंह प्रायः नुकीले चारा खाने, अखाद्य पदार्थ जैसे यूरिया, अधिक नमक या चूना आदि खाने से पक जाता है। विटामिन बी की कमी से कुत्ते, बिल्लियों का मुंह पक जाता है। इसके अतिरिक्त कुछ संक्रमक रोग जैसे मुंहपका (Vericular stomatitis), खुरपका–मुंहपका (FMD), नीलीजीभ (Blue tongue) या चेचक रोग आदि में भी मुंहपका हो सकता है। इनके उपचार हेतु निम्न उपाय कर सकते हैं :

मुंह धोने के लिए (कोल्यूटोरिया) का प्रयोग

1. पोटेशियम परमैंगनेट का 0.1 प्रतिशत घोल द्वारा।
2. एलम का 2.0 प्रतिशत घोल द्वारा।
3. लिस्टरीन या डेटोलिन या पीवीपोल का 0.5 प्रतिशत घोल द्वारा।
4. पोटेशियम क्लोरेट का 1 ग्राम, बोरेक्स का 12 ग्राम तथा ग्लिसरीन के 60 मिली0 के घोल द्वारा अथवा टैनिक एसिड 30 ग्राम, ग्लिसरीन के 150 मिली0 में पूर्णतः मिलाकर श्लेष्मा पर लगायें।
5. नारियल तेल अथवा मक्खन में बराबर मात्रा में मिला हुआ बोरेक्स पाउडर गाय–भैंसों, भेड़ तथा बकरी के मुंह की श्लेष्मा के लिए अत्यधिक लाभदायक है।

सहायक *(Supportive)* औषधियों का प्रयोग

1. विटामिन ए (ई.प्रीपालीन/वीटा–ए अथवा एक्वासोल), 4–6 मिली0 अंतः पेशीय विधि से
2. विटामिन सी (रेडोक्सोन रोश ई.), 5–10 मिली0 अंतःपेशीय विधि से
3. विटामिन बी–काम्पलेक्स, लीवर एक्सट्रेक्स के साथ जैसे बेलमिल, लीवोजन, बीकोम–एल., लेवीप्लैक्स, बीवीनाल–फोर्ट, लीवरजेट, सावामील, न्यूट्रीलिव इत्यादि। इनका 10 मिली0 बड़े पशुओं तथा 0.5–2.0 मिली0 छोटे पशुओं में पेशीय विधि से देना चाहिए तथा सन्ताप से बचाव के लिए माड़ को मीठे तेल के साथ दे सकते हैं।

2. सामान्य अपाचन तथा रूमन का समघातः इसमें पशु आहार छोड़ देता है। रूमन सिकुड़ा, कमजोर एवं सख्त हो जाता है तथा बुखार नहीं होता है। आमतौर पर यह चारे में बदलाव के कारण होता है। यह जानना आवश्यक है कि अपच का कारण क्षार है अथवा अम्ल। अम्ल तथा क्षार पेट (रूमन) के पदार्थों को लिटमस कागज द्वारा जांच कर किया जा सकता है। उपचार हेतु निम्न में से एक या दो दवाओं का प्रयोग कर सकते हैं :

क.) मैगसल्फ	150–250 ग्राम
सोडियम क्लोरेट	125 ग्राम
पिसा अदरक	30 ग्राम
सोडियम बाइकार्बोनेट	30 ग्राम
पानी	560 मिली0

ख.) 250 ग्राम मैगसल्फ, 50 ग्राम हिमालयन बत्तीसा अथवा यूनिवर्सल बत्तीसा में मिलाकर एक लीटर पानी में सावधानी से पिलायें। यह नुस्खा आँतों के प्रतिघात तथा कब्ज में भी दिया जा सकता है। यदि पेट का पी.एच. पहले सही कर लिया जाए तो यह अधिक लाभदायक होता है।

ग.) पाचन गोलियां जैसे रूमनटॉन (फाईजर), बोवीरम (साराभाई), रूमैक्साओन (के.टी.एस.), रूमन बोलस (एलैम्बिक), औनफीड बोलस (कैडी), एनोरेक्सोन फोर्ट (फाईजर) आदि की 2 से 4 गोलियाँ पानी में मिलाकर एक या दो बार रोज स्थिति की गम्भीरता पर निर्भर करते हुए, 2–4 दिन तक देना चाहिए।

घ.) डिजीवेट (चरक) 25 ग्राम तीन दिन तक, दिन में दो बार पिलाना चाहिए।

ड.) रूमीकेयर (इन्टरकेयर)–125 ग्राम पानी के साथ रोजाना दो बार।

च.) रूचामैक्स (डाबर)– 7.5 ग्राम दिन में दो बार, तीन दिन तक।

छ.) कैटोन पाउडर (कैटल रेमेडीज) 50 ग्राम, दिन में दो बार प्रयोग कर सकते हैं।

ट.) एन्टीहिस्टामिनिक के इन्जेक्सन, जैसे फीनाविल, जीत, एन्थीसान, एविल अथवा क्लोरिल का 5–10 मिली0 अतःपेशीय विधि से प्रयोग करें, क्योंकि हिस्टामीन का स्तर अत्यधिक बढ़ जाता है और इसे कम करने से लाभ मिलता है।

lgk;d mipkj

लीवर एक्सट्रैक्ट के इन्जेक्सन जैसे बेलामिल, लेवीप्लैक्स, बीकौम–एल, लीवोजेन, सावामील, वीबिलान, बीवीनाल फोर्ट, लीवरजेट,

न्यूट्रीलिव इत्यादि देने से भी लाभ होता है। मैक्सेरोन या पैरीनौर्म या रेगलॉन (मैटाक्लोरप्रोमाइट मोनोहाइड्रेट) पेट की सिकुड़न तथा गति को नियमित रखने तथा रूमन गति को रूकावट से मुक्त कराने में सहायक है। इनका उचित मात्रा में अंतःपेशीय इन्जेक्सन तथा इसके बाद 10 गोली मुख द्वार भी लाभदायक पायी गयी है। कुछ स्थितियां जिनमें पशु को बिना किसी प्रत्यक्ष कारण के भूख नहीं लगती, उनमें बेरिन (ग्लैक्सो) 10–20 मिली0 प्रतिदिन, 2–3 दिन तक अंतःपेशीय विधि से देना लाभदायक है।

रूमन की तीक्ष्ण क्षार अथवा अम्लीय स्थिति का यदि समय से उपचार नहीं किया जाए तो मृत्यु का कारण भी बन सकती है। अम्लीय स्थिति में 5–10 लीटर डेक्सट्रोज सेलाइन तथा सोडियम कार्बोनेट का 2–5 प्रतिशत घोल 2–5 लीटर तक, अंतःशिरा विधि से देना तथा रूमन को खाली करना जरूरी हो सकता है। 200–400 ग्राम मैग्नीशियम कार्बोनेट पानी में मिलाकर पिलाने से भी रूमन की अम्लता कम की जा सकती है। रूमन क्षार की स्थिति में 5–10 लीटर मठ्ठा दें जो लैक्टिक अम्ल प्रदान करता है तथा क्षार को समाप्त करने में सहायक होता है।

3. अफरा या रूमिनल टिम्पैनी (टिम्पेनाईटिस): इस रोग में बाई तरफ के माँसल पार्श्व का फैलाव अधिक गैस बने के कारण हो जाता है। पशु को बेचैनी, तेज साँस तथा घबराहट होती है। यह आसानी से गैस बनाने वाले आहार के कारण होता है, जैसे दाना, बरसीम, फलीदार चारा या आटे का अधिक खा लेना। इसके अतिरक्त आंत की रूकावट, आहार नाल का सकरा होना, पेट में कीड़े होना तथा बुखार इत्यादि में भी यह रोग हो सकता है। इस रोग में निम्न का प्रयोग कर सकते हैं :

R_x	एसिड कार्बोलिक (फिनोल)	4 मिली0
	ओलियम टेरीबिन्थ	30 मिली0
	ओलियम लिनी	500 मिली0

या

R_x	फॉर्मेलिन	8 मिली0
	टिंचर अदरक	30 मिली0
	पानी	250 मिली0

क.) टिम्पौल (इंडियन हर्बल)– 500 मिली0 पानी में 100 ग्राम मिलाकर पिलायें।

ख.) इम्पैक्टीफ (शोनन)– 50 मिली0 पानी में मिलाकर दिन में दो बार पिलायें।

ग.) तीव्र प्रकार के रोग में सर्वप्रथम प्रोबेंग द्वारा गैस निकालें तथा बाई तरफ के माँसल पार्श्व पर मालिस करें तथा पशु को चलाएं। पशु का मुंह

किसी लकड़ी की मदद से, जिसे रस्सी द्वारा सींग के पीछे से बांधा गया हो, खुला रखें। यह मुख द्वारा गैस निकालने में सहायक होता है। इसके अतिरिक्त पशु के आगे के पैरों को ऊँचे सतह पर रखें तथा उसे खड़ा रखें। अत्यधिक श्वसन कठिनाई होने पर ट्रोकार तथा केनुला अथवा मोटी सुई द्वारा रूमन में छेद करें। कोई एन्टी हिस्टामिनिक इन्जेक्सन जैसे ऐथीसान, फीनाविल, एविल, क्लोरिल अथवा जीत को 20–30 मिली0 अंतःत्वचा विधि से दें।

एक प्रकार का अफरा जिसे टिम्पैनी कहते हैं, प्रायः पेट (रूमन) के पदार्थो में गैस के बुलबुले मिल जाने के कारण होता है। यह चारे के कारण उत्पन्न हुई चिपचिपाहट के कारण होता है तथा इससे रूमन का पी.एच. भी बदल जाता है, जिसके कारण इसमें विशेष प्रकार के सूक्ष्म जीवों की मात्रा बढ़ जाती है जो गैस का निर्माण करते हैं। इसकी पुष्टि रूमन में ट्रोकार से छेद करने के उपरान्त की जा सकती है। इसमें प्रतिघात करने पर ढोल जैसी ध्वनि उत्पन्न नहीं होती। रूमन गति ज्यादातर बढ़ जाती है। इसके उपचार हेतु 500 मिली0 मीठे तेल में 500 मिली0 दूध मिलाकर हिलायें तथा पशु को पिलायें या 30–60 मिली0 तारपीन के तेल में 500 मिली0 मीठा तेल मिलाकर पशु को पिलायें या टिम्पोल (इन्डियन हर्बल) या ब्लोटोस्पेल (रेसपेल) 60–100 ग्राम गर्म पानी में मिलाकर पिलायें या 500 मिली0 मीठे तेल में 100 ग्राम काला नमक, 50 ग्राम मीठा सोडा, 25 ग्राम अजवाइन तथा 5 ग्राम हींग मिलाकर पिलायें।

उपरोक्त दवायें 1–2 घंटे के अन्तराल पर पिलायें तथा 2 दिन में यदि लाभ न हो तो कुशल सेवक द्वारा पेट को खोलकर उसके अन्दर के पदार्थ निकालकर रोग ठीक किया जा सकता है। बार–बार होने वाले अफरा को विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। इसके लिए गोबर की जांच कर आवश्यकतानुसार यदि कीड़े की सम्भावना हो जो कृमिनाशक दवा देना चाहिए। शरीर का तापमान बढ़ा हो या साथ में कोई अन्य रोग हो तो उसे ठीक करना चाहिए। पेट का पानी निकालकर उसका पीएच. भी जाँचना चाहिए। यदि पीएच. असामान्य 6 से कम हो तो उसके सोडा पिलाना चाहिए तथा यदि पीएच. 7 से ज्यादा हो तो नींबू का रस या सिरका आवश्यकतानुसार पिलाना चाहिए। सब कुछ सामान्य होने पर व पशु द्वार आहार न ग्रहण करने पर, किसी अन्य पशु के पेट का पानी 2–3 लीटर तक प्रतिदिन पिलाया जा सकता है या फिर बायोवेट प्लस, बायोबूस्ट या फ्लोरीटॉन नामक दवाओं की दुगुनी खुराक को ब्लोटोसिल या टिम्पोल आदि के साथ दे सकते हैं।

इसके अतिरिक्त ट्रोमेटिक रेटिकुलो पेरिटोनाइटिस (Traumatic

reticuloperitonitis) नामक रोग में भी बार–बार अफरा होता है इसे पहचाने के लिए यदि पशु के अगले पैरों के ठीक पीछे पसलियों पर दबाव डालते हैं तो उसे दर्द होता है। आला या स्टेथोस्कोप से जाँच करने पर दिल की धड़कन असामान्य सुनाई देती है। ऐसा लगता है जैसे दिल को पानी में डुबों दिया गया है या उसके चारों ओर मफलर लपेट दिया गया है। रक्त की जाँच में न्यूट्रोफिल नामक श्वेत रूधिर कणिकाओं (WBC) की संख्या 70 प्रतिशत से अधिक हो जाती है। यह रोग प्रायः लाइलाज होता है। किन्तु कुछ कुशल पशु चिकित्सक ऑपरेशन द्वारा इस रोग को ठीक कर लेते हैं।

4. कब्जः कब्ज प्रायः अभोज्य पदार्थ अधिक खाने, शरीर का तापमान सामान्य से कम होने, परजीवी के प्रकोप, दस्त के बाद कमजोरी, शरीर में पानी की कमी तथा पॉलीथीन आदि खाने से होता है। उपचार हेतु 5–10 लीटर गुनगुने पानी में 5–10 ग्राम नमक का घोल या 500 ग्राम मैग्नीशियम हाडड्रोक्साइड मिलाकर पिलाने से दस्त लग सकता है। रूमेन की क्रियाशीलता बढ़ाने के लिए कार्बेनिल, कोलीन क्लोराइड, फाइसोस्टिगमीन आदि का 5 मि.ली. प्रति 100 कि.ग्रा. शरीर भार की दर से अंतःपेशीय विधि से दे सकते हैं।

5. दस्तः प्रायः छोटी उम्र के बच्चों में दस्त अधिक होता है। एक माह तक के बच्चों में कॉक्सीडिया के कारण तथा तीन माह तक के बच्चों में अंतःकृमि के कारण दस्त होता है। जीवाणु जनित दस्त किसी भी उम्र में हो सकता है। दस्त वस्तुतः विषाक्त अथवा दूषित पदार्थों को शरीर से बाहर निकालने का उपाय है। गोबर, रक्त तथा पशु के तापमान आदि की जाँच करके ठीक वही दवा का उपचार हेतु प्रयोग करना चाहिए जो कारक को नष्ट कर सकें।

उपचार

बाजार में विभिन्न दवायें उपलब्ध हैं, जैसे नेबलान, डायरेक्स, स्टेट, डायस्ट्रिन, डिस्पेल, कैटोरिया इत्यादि। इन पाउडरों में से कोई भी एक का 5 ग्राम प्रति 25 कि.ग्रा. शरीर भार के अनुपात में देना चाहिए। साथ में कोट्रिम, पेस्युलिन या मारकोजिल बोलस की एक गोली प्रति 50 कि.ग्रा. शरीर भार के अनुसार भी प्रयोग कर सकते हैं। इस प्रकार की अनेक औषधियाँ उपलब्ध हैं।

पशु को दस्त से बचाव के उपाय

पशुशाला को स्वच्छ रखना चाहिए तथा पशु एवं बर्तन इत्यादि की भी सफाई नियमित रूप से करनी चाहिए। पशुओं को क्षमता के अनुसार ही बाड़े में रखें तथा नवजात शिशुओं को शरीर भार का 10 प्रतिशत भार के

बराबर खीस अवश्य पिलानी चाहिए। सभी पशुओं का समय–समय पर अंतः कृमि नाशन करना चाहिए तथा आहार स्वच्छ व ताजा देना चाहिए। इससे पशुओं में दस्त की सम्भावना कम हो जाती है।

6. पेट बंध जानाः पशु यदि आवश्यकता से अधिक मात्रा में चारा, दाना या अन्य न खाये जाने योग्य पदार्थ जैसे पॉलीथीन खा लेता है, तो यह आहार नाल में इकट्ठा होकर कठोर हो जाता है, इसे ही पेट बंध जाना या इम्पैक्सन कहते हैं। यह प्रायः धीरे–धीरे कुछ दिनों में होने वाली प्रक्रिया है। इससे पेट का सिकुड़ना–फैलना (क्रमाकुन्चन) बंद हो जाता है। कभी–कभी यह फफूंद द्वारा संक्रमित चारा खाने, कमजोरी, विटामिन–बी की कमी एवं गर्भकाल में भी हो जाता है। रोग के लक्षण इस बात पर निर्भर करते हैं कि पशु ने कितना और किस प्रकार का आहार ग्रहण किया है। इस रोग में पेट में दर्द होता है। अतः पशु पैर पटकता है, पेट की ओर देखता है, सिर लटकाकर इधर–उधर देखता है, आँखें धस जाती हैं, गर्र–गर्र की आवाज करता है, चलने–फिरने में आलस्य करता है, नाक से पीला श्राव होता है, चारा खाना कम कर देता है, कोख पर हवा भरी प्रतीत होती है। शरीर का तापमान सामान्य से कम हो जाता है। श्वसन दर तथा नाड़ी गति सामान्य से तेज हो जाती है। गोबर कम, चिकना तथा हल्के रंग का होता है और पशु बार–बार दांत किटकिटाता है।

रोग का निदान रोग के बारे में जानकारी लक्षण तथा पेट के पानी की जाँच द्वारा करते हैं। छोटे पशुओं में एक्स–रे द्वारा भी निदान कर सकते हैं। उपचार हेतु सर्वप्रथम रूमन की अम्लता 6.4 पर लाने का प्रयास करना चाहिए। यदि अम्लता ज्यादा है अर्थात पी.एच.–6.4 से कम है तो मीठा सोडा 100 ग्राम 8 घण्टे के अन्तराल पिलाना चाहिए और यदि पी.एच.–6.4 से ज्यादा है तो ऐसीटिक ऐसिड या सिरका 500 मि.ली. 8 घण्टे के अन्तराल पर पिलाना चाहिए। बंध को दूर करने हेतु मीठा तेल 500 मि.ली. 8 घण्टे के अन्तराल पर देना चाहिए। इसके अतिरिक्त क्रमाकुंचन गति बढ़ाने हेतु 10 मि.ली. अंतःपेशीय विधि से पेरीनार्म नामक दवा 12 घण्टे के अन्तराल पर दे सकते हैं, यदि बंद 2–3 दिन पुराना है तो एविल आदि दवा का भी प्रयोग कर सकते हैं, किन्तु पुराने बंछ पर दवाओं का असर कम होता है। अतः योग्य पशु सर्जन द्वारा आपरेशन ही एक उपाय शेष रह जाता है। रोग न हो, इसके लिए आहार कम मात्रा में बार–बार देना चाहिए। पशु को अन्य रोगों से बचाना चाहिए एवं पॉलीथीन आदि खाने से भी बचाना चाहिए।

7- vkgkj uky dh :dkoV ;k pksd% जब बगैर ठीक से चबाए कोई आहरिक या ना खाने योग्य पदार्थ गले में फंस जाता है तो यह आहार नाल

की रूकावट करता है। पशु इसके बाद अन्य खाने योग्य आहार भी नही ग्रहण कर पाता है। यह प्रायः सूखा चारा अधिक खाने, आलू, सेब, आम की गुठली, लकड़ी का टुकड़ा, पॉलीथीन, पुराना जूता–चप्पल, रबर की गेंद, खिलौना आदि खाने से होता है। यदि आहार नाल में पूर्ण रूप से रूकावट हो गयी हो तो पशु को अफरा भी हो जाता है। पशु के मुंह से लगातार लार गिरती है। पशु बार–बार उल्टी की कोशिश करता है। पशु बेचैन रहता है और बार–बार जीभ बाहर निकालता है। गर्दन आगे को तनी हुई रहती है और गले पर बाहर से देखने पर भी कोई चीज फंसी हुयी दिखाई देती है। यदि फंसी हुई चीज छोटी हो तो रोग के लक्षण कम तीव्र प्रकार के होते हैं। रोग का निदान या पहचान अनुभवी पशुपालक या चिकित्सक लक्षण के द्वारा तथा खायी गयी वस्तु के बारे में पता कर लेते हैं। कभी–कभी प्रोबैंग या प्लास्टिक की नली मुंह के रास्ते गले में प्रवेश कराकर भी रोग का पता लगाया जाता है। बेरियम देकर एक्स–रे करके भी फंसी हुई चीज का पता लगाया जा सकता है। अधिकांशतया तो गले पर मालिश करके ही पता लगा लेते हैं।

उपचार हेतु गले में फंसी हुई चीज यदि मुंह के पास है तो मालिश द्वारा मुंह तक लाकर मुंह में हाथ डालकर निकाल सकते हैं और यदि वस्तु पेट के पास है तो मालिश या प्रोबैंग या प्लास्टिक ट्यूब द्वारा पेट में धकेला जा सकता है। यदि पशु चोक के कारण बेचैन है तथा अफरा से भी प्रभावित है तो पहले बेचैनी या अफरा का उपचार करके तब चोक का उपचार करना चाहिए। बेचैनी दूर करने हेतु सिक्विल की सुई इन्जेक्सन द्वारा लगा सकते हैं तथा अफरा ठीक करने हेतु मोटी सुई बांई ओर कोख में लगाकर हवा निकाल सकते हैं। इसके अतिरिक्त पशु को एट्रोपिन का इन्जेक्सन भी लगा सकते हैं जिससे लार कम बने। चोक की अवधि में चारा नहीं खिलाना चाहिए।

8. रेटिकुलम का घाव या ट्रोमेटिक रेटिकुलाइटिसः यह गाय–भैसों में किसी नुकीली चीज जैसे सुई, कील या कांच के टुकड़े इत्यादि के खाने से होता है। यह प्रायः एक लाइलाज रोग है। इस रोग में पशु को लगातार हल्का ज्वर रहता है। पशु आहार कम लेता है तथा उसकी उत्पादन क्षमता का तीव्र ह्रास हो जाता है। यह रोग तार, बोल्ट, चेन, सिक्का, कील, सुई, लकड़ी या जूता आदि खाने से होता है। यह प्रायः शहरों के उन पशुओं में होता है जो गली–गली घूम कर चरते हैं या उन पशुओं में होता है जो मनुष्यों के साथ एक ही घर में रहते हैं और मनुष्य झाड़ू लगाकर घर का कूड़ा पशु की ओर कर देते हैं जिसे पशु खा लेता है।

इस रोग का प्रभाव प्रायः पशुओं में मादा के व्याने के बाद ही होता है चाहे पशु ने कभी भी नुकीला पदार्थ खाया हो क्योंकि जब पशु गाभिन होता है तो पेट में पल रहे बच्चे के कारण प्रत्येक वस्तु आगे की और खिसक जाती है और बच्चा पैदा होते समय एकदम से ताकत के साथ पीछे जाती और फिर पीछे टकराकर आगे पेट में छेद बना देती है। कभी–कभी यह आगे का टकराना इतना जबरदस्त होता है कि डायफ्राम और फिर दिल तक घाव हो जाता है। गाय–भैसों में यह रोग अधिक होता है क्योंकि ये चारे को खाते समय बिना चबाये ही निगल जाते हैं और बाद में जुगाली करते हैं।

इस रोग से ग्रसित पशु चारा खाना एक दम छोड़ देता है। दूध उत्पादन घट जाता है और लगातार ज्वर बना रहता है। पशु को चलने में दर्द होता है। नीचे के ढलान पर चलने से दर्द बढ़ जाता है। पशु बड़ी सावधानी से बैठता है और अधिकांशतया खड़ा रहना पसन्द करता है। रीड़ की हड्डियां धनुषाकार हो जाती हैं। गोबर–मूत्र त्याग में कष्ट होता है। बार–बार अफरा होता है तथा रक्त परीक्षण में न्यूट्रोफिल की संख्या बढ़ जाती है। इस रोग का उपचार लगभग असम्भव है। अतः जितना शीघ्र हो सके, रोग की पहचान कर आपरेशन द्वारा रेटिकुलम से ही नुकीले पदार्थ को निकालने का प्रयास करना चाहिए। पशु को प्रतिजैविक औषधि के साथ रोगों के प्रभाव को कम करने वाली औषधियाँ देनी चाहिए। जैसे मेलाक्सीकेम तथा क्लोरफिनरामिन मैलिएट आदि। यदि नुकीली चीज रूमेन से डायाफ्राम होते हुए दिल तक चली गयी है तो उपचार असम्भव हो जाता है। केवल अति नवीन सुविधाओं वाले अच्छे चिकित्सालय में ही उपचार सम्भव होता है।

9. डायाफ्राम की हर्निया: डायाफ्राम नामक झिल्ली फेफड़ों और हृदय को मुख्य पेट एवं अन्य पाचन के अंगों आदि से अलग रखती है। किसी कारण से यदि डायाफ्राम में छेद हो जाये तो पेट (जिसमें रेटिकुलम मुख्य है) का कुछ भाग झिल्ली के दूसरी ओर चला जाता हैं। यह भैंसों में गाय से अधिक पाया जाता है और भैंसों की मृत्यु का एक प्रमुख कारण है। यह ब्याने के बाद होने वाला एक प्रमुख रोग है। यह रेटिकुलम नामक पेट के एक भाग के द्वारा लगातार रगड़ पड़ने के कारण हो सकता है। यह दुर्घटना के समय की चोट के कारण या पेट में बच्चे के दबाव से भी हो सकता है। जन्मजात रूप से छेद होने पर भी हर्निया हो सकता है। रोग के लक्षण डायाफ्राम में हुए छेद के आकार पर निर्भर करते हैं। पशु चारा खाना कम कर देता है, सदैव मध्यम अफरा बना रहता है, पशु बार–बार कम मात्रा में चिकना गोबर करता है, जुगाली कम करता है और निरन्तर कमजोर होता जाता है। हर्निया बड़ी होने पर पशु मुंह खोलकर सांस लेता

हैं और कुछ सप्ताह बाद पशु की मृत्य हो जाती है। रोग की पहचान में लक्षण ही सहायक हैं। जहाँ सम्भव हो, एक्स–रे किया जा सकता है। बीमारी के बाद भी रक्त परीक्षण में सामान्य परिणाम प्राप्त होते हैं। इस रोग में औषधियों द्वारा उपचार सम्भव नहीं है। विशेष अस्पतालों में आपरेशन किया जा सकता है किन्तु परिणाम अच्छे नहीं प्राप्त होते हैं।

10. एबोमेजम का खिसकनाः सामान्यतया चारा खाने वाले पशुओं के पेट का यह चौथा भाग (एबोमेजम) बीच में पाया जाता है परन्तु गर्भ अवस्था के अन्तिम दिनों या पशु के असामान्य रूप से कूदने या दुर्घटना आदि के कारण यह एक ओर खिसक जाता है। ऐसा होने पर पेट में दर्द, अफरा तथा जिस ओर खिसकता है उधर उभार हो जाता है। प्रायः यह बायीं ओर खिसकता है। रोगी पशु को भूख कम लगती है, गोबर पतला व चिकना होता है तथा पशु कमजोर हो जाता है। पेशाब में मीठी खुशबू आने लगती है। रोग की पहचान लक्षणों के आधार पर होती है। उपचार हेतु पशु को उल्टा पीठ के बल लिटाकर तेजी से जिस ओर पेट खिसका है उस ओर पलटते हैं। इससे कभी–कभी लाभ मिलता है और कभी तो पशु के ऊँची–नीची जगह पर चलने या कूदने से भी यह ठीक हो जाता है। यदि फिर भी ठीक न हो तो आपरेशन करना पड़ता है।

11. आंत्रशोथः यह आँतों में होने वाला संक्रमण है जिसमें आँतों में सूजन, दर्द तथा दस्त होता है। यह प्रायः अधिक खाने, खराब या सड़ा चारा खाने या जहरीला पदार्थ खाने, दुर्घटनावश एसिड या कोई केमिकल खाने, रेत खाने या किसी वस्तु की एलर्जी होने से होता है। यह रोग अनेक प्रकार के जीवाणु, विषाणु, कवक तथा परजीवियों के संक्रमण से भी होता है। कभी–कभी किडनी खराब होने पर रक्त में यूरिक अम्ल आदि के बढ़ने से भी आंत्रशोथ होता है। रोगी पशु में अचानक दर्द होता है, शरीर का तापमान प्रारम्भ में बढ़ता है, बाद में घट जाता है। गोबर पतला, बदबूदार तथा कभी–कभी रक्तयुक्त होता हैं। यदि शीघ्र उपचार न किया जाये तो पशु कमजोर होकर मर भी सकता है। आहार के बारे में जानकारी का विश्लेषण कर तथा लक्षणों के द्वारा रोग का पता लगाया जाता है तथा उपचार हेतु उचित मात्रा में सल्फा या किसी प्रति जैविक की गोली खिलाते हैं या इन्जेक्सन द्वारा देते हैं। शरीर में हुई पानी की कमी को 5 प्रतिशत डेक्स्ट्रोज या नार्मल सैलाइन देकर ठीक करते हैं। पशु जब चारा खाने लगे, तभी अंतः कृमिनाशक दवा का प्रयोग करते हैं। पशु द्वारा रेत खा लेने की दशा में कोई भी खाने वाला तेल जैसे तिल, तीसी, अलसी आदि को 2–3 लीटर तक पिलाने के बाद ही उपचार करना चाहिए।

12. पेट में दर्द या कोलिक (Colic): पेट में होने वाले दर्द को कोलिक कहा जाता है। यह मुख्य रूप से आंतों के लयबद्ध गति (Parastaltic movement) में तेजी, परजीवी, अपचित आहार के एकत्र होने या गैस भरने के कारण होता है। कभी–कभी किडनी की खराबी, यकृत के रोगों, पेट के सिस्ट या पेशाब न होने के कारण भी पेट में दर्द हो सकता है। पेट में दर्द अधिक व्यायाम या परिश्रम के बाद पानी पीने, जीवाणु, विषाणु आदि के संक्रमण, मिट्टी या रेत खाने, आहार के अचानक बदलाव, कम पानी पिलाने, पेट में बच्चा होने या आंतों में रूकावट के कारण भी होता है। रोगी पशु बेचैन रहता है, उसे पसीना आता है, बार–बार प्यास लगती है, किन्तु पानी कम ही पीता है और बार–बार पेशाब करता है। शरीर का ताप, नाड़ी तथा श्वसन दर बढ़ जाती है। पशु चारा–दाना नही खाता, शरीर को तानता है तथा जमीन पर लोटता है। रोग की पहचान में लक्षण तथा आहार आदि का विवरण लाभप्रद होता है।

रोग के उपचार के लिए सर्वप्रथम दर्द कम करने हेतु एनल्जीन, डिक्लोफेनेक, मेलोनेक्स, नेम्युसलाइड में से कोई एक दवा उचित मात्रा में देते हैं। क्लोरल हाइड्रेट, सिक्विल, जाइलाजीन भी प्रयोग कर सकते हैं। तत्पश्चात रोग का कारण जैसे परजीवी हेतु अंतःकृमिनाशक, गैस हेतु हींग 5 ग्राम प्रति 100 कि.ग्रा. शरीर भार की दर से और अपचित चारा हेतु तेल 1 लीटर प्रति 10 कि.ग्रा. शरीर भाग की दर से तथा साथ में पाचक चूर्ण दे सकते हैं। संक्रमण हेतु प्रति जैविक तथा किडनी या यकृत की खराबी को उस रोग विशेष की दवा देकर ठीक करना चाहिए जिससे पेट दर्द स्वयं ही ठीक हो जायेगा।

13. आंतों में रूकावटः पाचन तन्त्र के रोगों में एक महत्वपूर्ण तथा आसानी से न पहचाने जाने वाले रोगों में एक है आंतो में रूकावट। इसमें कभी तो आंतें एक लूप की तरह मुड़ जाती हैं, कभी आंतों में आंतें घुस जाती हैं और कभी बाहर से किसी अन्य अंग के दबाव के कारण आंतों में रूकावट आ जाती है। ऐसी दशायें पशु द्वारा कूदने, जमीन पर तेजी से लोटने, ट्यूमर, क्रमाकुंचन गति के अनियमित होने से होती है। इस रोग में पशु के पेट में दर्द होता है, पसीना अधिक निकलता है और नाड़ी गति बढ़ जाती है। गोबर कम तथा अत्यधिक श्लेष्मायुक्त होता है या गोबर होता ही नहीं। रोग की पहचान लक्षणों के आधार पर करते हैं। उपचार एक कुशल पशु चिकित्सक आपरेशन द्वारा कर सकता है।

यकृत रोग

यकृत पाचन तंत्र का प्रमुख अंग है। यकृत के सुचारू रूप से न चलने के कारण अनेक रोग हो सकते हैं। पुराना राशन, चारा या अन्य

विषाक्त पदार्थ खाने से यकृत रोग हो सकते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ विशेष प्रकार के संक्रमण जैसे यकृत कृमि, लैप्टोस्पाइरा जीवाणु या संक्रामक हिपेटाइटिस नामक विषाणु के कारण भी हो सकता है। यद्यपि यकृत में पुर्ननिर्माण की अत्यधिक क्षमता होती है किन्तु मात्र कुछ दिनों के रोग ग्रसित होने पर ही उत्पादन की अत्यधिक हानि होती है। अतः इसका शीघ्रता से निदान एवं उपचार आवश्यक होता है। यकृत के रोग ग्रसित होने से अपच हो जाता है। पशु सुस्त हो जाता है और उसका मल हल्के रंग का हो जाता है तथा उदर में जहाँ यकृत होता है, वहाँ दबाव देने पर दर्द होता है। उपचार से पूर्व रक्त, गोबर तथा सीरम की जाँच द्वारा रोग कारक का पता लगाना आवश्यक है तथा उपचार हेतु सर्वप्रथम रोग कारक को दूर करना चाहिए। पशु को शीघ्रता से पचने वाला आहार देना चाहिए। उचित मात्रा में अंतःशीरा विधि से 5 प्रतिशत डेक्स्ट्रोन देना चाहिए तथा लीवर के रस का इन्जेक्सन जैसे बेलामाइल आदि भी लगाना चाहिए। यदि रोग संक्रामक है तो उसे नष्ट करने के लिए उचित दवा देनी चाहिए। तत्पश्चात होने वाले जीवाणु संक्रमण को रोकने हेतु प्रतिजैविक औषधि का प्रयोग भी करना चाहिए। औषधियों के शीघ्र असर हेतु विटामिन–ए एवं सी भी दिया जा सकता है।

छोटे पशुओं में ग्लूकोज द्वारा उपचार के लिए 200 से 400 मिली0 5 प्रतिशत डैक्स्ट्रोज अन्तःशिरा विधि से अथवा लिव–52 या कोई अन्य यकृत के टॉनिक की गोली या बूंदें कुत्ते तथा बिल्ली में दे सकते हैं। प्रोटीवैक्स या वेट्रिल या डैक्सोरेज या लिवोफोन्रिया या हिपैटोग्लोबिन एक चम्मच दिन में दो बार खाने के साथ देना चाहिए। ये यकृत क्रिया ठीक करने तथा भूख बढ़ाने में सहायक होते हैं। यकृत रोग में प्रतिजैविक भी देना चाहिए जिससे मुख्य सूक्ष्मजीवी संक्रमण का निरोध हो सके। पशु को पूर्ण आराम दें तथा नियमित रूप से यकृत क्रिया सम्बन्धी जाँच करें।

❑❑❑

6 श्वसन तन्त्र के रोग

श्वसन तंत्र समस्त पशुओं में रक्त के माध्यम से ऑक्सीजन तथा अन्य आवश्यक पोषक तत्वों को शरीर की प्रत्येक कोशिका तक पहुंचाने का कार्य करता है। यह तंत्र नासिका से प्रारम्भ होता है तथा लैरिक्स (Larynx) ट्रेकिया या श्वसन वाहिका या ब्रांकाई से होता हुआ फेफड़े या फुस्फुस तक जाता है। यह तंत्र फेफड़ों के माध्यम से विषाक्त कार्बन–डाईऑक्साइड नामक गैस निकालने का कार्य भी करता है। जब शरीर में ऑक्सीजन की कमी हो जाती है तो इसे एनाक्सिया कहते हैं और जब फेफड़े ठीक प्रकार से कार्बन–डाइऑक्साइड गैस को बाहर नहीं निकाल पाते तो इसे हाइपरकैप्निया कहते हैं। इसी प्रकार ऑक्सीजन रहित रक्त होने को साइनोसिस कहते हैं, इस दशा में बाहर से दिखने वाली श्लेष्मा झिल्ली जैसे आँख की पुतली, योनि व मुख इत्यादि गुलाबी की जगह नीली पड़ जाती है।

श्वसन तन्त्र के रोगी में पशु हाफता है, सांस लेने में कष्ट होता है, नाक से पानी या गाढ़ा अथवा पीला मल निकलता है, रक्त भी निकल सकता है और पानी अधिक पीता है। श्वसन तन्त्र के रोग न हो, इस हेतु नाक में बाल होते है, उससे छनकर रोग कारक नाक से बाहर ही रह जाते है। यदि वो बाल के उस पार चले जायें तो पशु को छींक आ जाती है और रोगकारक बाहर आ जाते हैं। यदि फिर भी रोग कारक बचकर आगे निकले तो नाक के अन्दर होने वाले श्राव में फंस जाते हैं और सूखकर पपड़ी के रूप में बाहर आ जाता है। यदि फिर भी रोग कारक आगे बढ़ जाये तो वह शरीर के अन्दर के रोग प्रतिरोधी तन्त्र द्वारा निष्क्रिय कर दिया जाता है और यदि यह भी फेल हो जाय तो ही रोग होता है।

श्वसन तन्त्र के मुख्य रोग

1. जुकामः यह श्वसन तन्त्र का सर्वाधिक, साधारण किन्तु कष्टदायी रोग है। इस रोग में पशु के नाक से पानी जैसा श्राव निकलता है, पशु को श्वसन में तकलीफ होती है और वह बेचैन रहता है। यह रोग ठंड लगने, धूल, धुंआ, भूसा व केमिकल गैस के प्रभाव के कारण हो सकता है। इसके अतिरिक्त अनेक जीवाणु, विषाणु, कवक तथा परजीवी भी इस रोग के कारक हो सकते हैं। शहर में पाले जाने वाले पशुओं में दूषित वातावरण के कारण एलर्जी से भी जुकाम हो सकता है। इस रोग से ग्रस्त पशु को पहले

हल्की सुस्ती आती है, हल्का ज्वर भी हो सकता है, पहले पानी जैसा श्राव नाक से निकल सकता है, बाद में यह गाढ़ा तथा पीला भी पड़ सकता है। पशु को बार–बार छीकें आती हैं। सांस लेने में तकलीफ हो सकती है और पशु की उत्पादन क्षमता घट जाती है। रोग की पहचान लक्षणों के आधार पर तथा रोगकारक की पहचान नाक के श्राव के परीक्षण से की जा सकती है। उपचार हेतु एलर्जी का प्रभाव घटाने की दवा जैसे एविल तथा शीघ्र लाभ हेतु प्रतिजैविक जैसे स्ट्रेप्टोमाइसिन, एम्पीसिलीन आदि का प्रयोग कर सकते हैं। पशु को आराम देना भी लाभकारी होता है।

2. ऊपरी श्वसन वाहिका के रोगः प्रायः श्वसन तन्त्र के लैरिंक्स, ट्रेकिया तथा ब्रांकाई में दूषित वायु या संक्रमण के कारण पशु को बार–बार खाँसी आती है तथा सांस लेते समय घर्र–घर्र की आवाज होती है जिससे पशु बेचैन रहता है। ऊपरी श्वसन वाहिकाओं के रोग धूल, धुंआ, परागकण, दूषित वायु, चोट लगने, कांटा या तार चुभने या संक्रमण जैसे अलार्क रोग, डिप्थीरिया आदि के कारण होते हैं।

ठंड लगने के कारण भी ऊपरी श्वसन वाहिका के रोग होते हैं। रोग से प्रभावित पशु में सूखी खांसी आती है जो उपचार के अभाव में गीली हो जाती है। सांस लेने में तकलीफ होती है, श्वसन दर बढ़ जाती है। पशु कम मात्रा में आहार लेता है तथा उत्पादन घट जाता है। रोग की पहचान लक्षणों के आधार पर करते हैं तथा उपचार हेतु प्रतिजैविक औषधि का टीका लगाते हैं। कफ सिरप चटाते हैं, पशु को स्वच्छ वायु में रखते हैं तथा ठीक होने तक आराम देते हैं।

3. नकसीरः इस रोग से ग्रसित होने पर पशु के नाक से खून बहता है। प्रायः यह नाक या ऊपरी श्वसन वाहिका में चोट लगने के कारण होता है। इसके अतिरिक्त अधिक गर्मी में, विषाक्त पदार्थ जैसे ब्रोकन फर्न, फूलगोभी की पत्ती या स्वीट क्लोवर खाने से भी हो सकता है। कुछ रोग जैसे गाय–भैसों में तिल्ली रोग (एन्थ्रैक्स) व घोड़ों में परप्यूरा हिमोरेजिका या ग्लैण्डर्स में भी होता है।

इसके अतिरिक्त जोंक के कारण भी नकसीर रोग होता है। इस रोग में पशु के नाक से रक्त श्राव होता रहता है, पशु बेचैन रहता है, आहार कम लेता है तथा उत्पादन घट जाता है। रोग की पहचान स्पष्ट लक्षण के कारण आसान है तथा उपचार हेतु पहले यह देख लें कि जोंक तो नहीं है। यदि जोंक हो तो पहले नमक का घोल नाक में इन्जैक्सन की सहायता से डालें तथा बाद में स्वच्छ ठंडे पानी से कई बार नाक को साफ करें।

जोंक के न होने पर सीधे ही ठंडा पानी नाक में डालें तथा ऊपर से बर्फ 30–40 मिनट तक चेहरे पर नाक के ऊपर रखें। उचित मात्रा में एड्रलीन के साथ रेवेसी या स्ट्रेप्टोक्रोम या बोट्रोपोज का इन्जेक्सन लगाए। सम्भव हो तो पशु के नाक में एपीनेफ्रिन या एड्रेनलीन से रूई भिगाकर रक्त श्राव की जगह में रखें।

4. न्यूमोनिया: जब पशु के फेफड़ों में किसी प्रकार का संक्रमण हो जाय और फेफेड़ों में सूजन तथा श्राव हो और सांस लेने में कठिनाई हो तो उसे न्यूमोनिया करते हैं। प्रभावित पशु कम गहराई की और जल्दी–जल्दी सांस लेते हैं। यह रोग अनेक कारणों से होता है जैसे दूषित वायु, कवक, जीवाणु, विषाणु, परजीवी एवं चोट लगना आदि। कभी–कभी दवा पिलाते समय दवा के फेफड़ों में जाने के कारण भी यह रोग होता है। पौष्टिक आहार की कमी, लम्बे समय तक कार्य जैसे बोझा ढोना एवं मौसम में आये अचानक बदलाव के कारण भी यह रोग हो सकता है।

रोगी पशु को भूख कम लगती है। वह सुस्त रहता है और सांस तेज गति से, कम गहरी, मुख खुला रखकर, गर्दन लम्बी कर एवं जीभ बाहर निकाल कर लेता है। सांस लेते समय घर्र–घर्र की आवाज आ सकती है। खांसी भी आती है जिसमें कफ हो सकता है। पुराने न्यूमोनिया में गाढ़ा–पीला कफ आता है। नाक से श्राव होता है। पशु को ज्वर भी हो सकता है। रोग की पहचान लक्षण के द्वारा और पशु के रोगी होने का इतिहास पता कर किया जा सकता है। रक्त जांच में यदि न्यूट्रोफिल ज्यादा हो तो जीवाणु रोग कारक होते हैं और इओसिनोफिल ज्यादा हो तो परजीवी या एलर्जी हो सकती है तथा लिम्फोसाइड ज्यादा हो तो विषाणु रोग कारक हो सकता है।

फेफड़े को हुए नुकसान का पता एक्स–रे की जाँच से लगता है। उपचार हेतु पशु को स्वच्छ हवादार घर में स्वस्थ पशुओं से अलग रखते हैं। पशु को मौसम के प्रभाव से बचाते हैं। नरम, शीघ्र पचने वाला, स्वादिष्ट आहार देते हैं तथा टिंचर बेन्जीन या यूकेलिप्टस के तेल को सुंघाते हैं। कफलान पाउडर गुड़ में मिलाकर चटनी की तरह चटाते हैं और प्रति जैविक औषधि जैसे टेरामाइसिन या पेन्सिलीन या एनराक्सीन आदि की उचित मात्रा, एविल आदि के साथ टीके के रूप में लगाते हैं।

5. अस्थमा: इस रोग में फेफड़े प्रभावित होते हैं और पशु को सांस लेने में तकलीफ होती है। यह रोग प्रायः दूषित वायु के कारण होने वाली एलर्जी से होता है। पशु मुंह खुला रखकर सांस लेता है। यह रोग एलर्जी, फेफड़ा

कृमि, ऐस्केरिस की फेफड़ों में उपस्थिति, कवक तथा औद्योगिक वायु के ग्रहण करने के कारण हो सकता है। रोगी पशु को सांस लेते समय तकलीफ होती है जिससे वह मुंह खोलकर व जीभ निकालकर सांस लेता है। नाक से श्राव होता है तथा शरीर का तापमान सामान्य से थोड़ा बढ़ा रहता है। पशु सुस्त रहता है तथा आहार कम लेता है। सांस की गति तथा गहराई बढ़ जाती है। खांसी आती है तथा पशु का उत्पादन घट जाता है।

रोग की पहचान में रोग होने का इतिहास तथा लक्षण सहायक होते हैं। रोग की तीव्रता प्रातः तथा सायंकाल में अधिक होती है। उपचार के लिए सर्वप्रथम एलर्जी कम करने हेतु एविल, जीत आदि के साथ एड्रलीन नामक दवा की उचित मात्रा का उपयोग करना चाहिए। रोग शीघ्र ठीक हो और साथ में अन्य रोग न होने पायें, इसके लिए प्रतिजैविक औषधि का भी प्रयोग करना चाहिए।

❑❑❑

7 उत्सर्जन तन्त्र के रोग व उपचार

शरीर की विभिन्न अभिक्रियाओं के संचालन हेतु ऊर्जा की आवश्यकता को पूरा करने के लिए आहार, पानी, ऑक्सीजन ग्रहण करना होता है जो चयापचयी अभिक्रिया (मेटाबोलिज्म) के पश्चात् उत्सर्जन हेतु विषाक्त पदार्थो में परिवर्तित हो जाते हैं। इन विषाक्त पदार्थों के ठीक प्रकार से उत्सर्जन हेतु पशु शरीर में एक सम्पूर्ण विकसित तन्त्र होता है जिसे उत्सर्जन तन्त्र कहते है। ग्रहण की गयी ऑक्सीजन विभिन्न अभिक्रियाओं के फलस्वरूप कार्बन डाईआक्साइड में परिवर्तित हो जाती है जिसे फेफड़ो के ही माध्यम से सांस द्वारा शरीर के बाहर निकाल दिया जाता है।

ठोस आहार पाचन तन्त्र में पचकर शरीर के विभिन्न ऊतकों द्वारा शर्करा, वसा, प्रोटीन, विटामिन एवं खनिज लवण के रूप में उपयोग में लाया जाता है और शेष शरीर के लिए अनुपयोगी पदार्थ मल या गोबर के रूप में शरीर से गुदा द्वार द्वारा बाहर निकाल दिये जाते हैं। लेकिन पानी विभिन्न शारीरिक अभिक्रियाओं में उपयोग में लाने के पश्चात् मूत्र के रूप में विभिन्न अनुपयोगी एवं विषाक्त रसायनों के साथ मूत्र वाहिकाओं के माध्यम से निकाला जाता है। उत्सर्जन में मूत्र के भौतिक, रासायनिक एवं सूक्ष्मजीवी परीक्षणों का सम्पूर्ण उत्सर्जन प्रक्रिया के संचालन एवं विकृतियों का अनुमान लगाने में महत्व है। संक्षेप में उत्सर्जन तन्त्र के प्रमुख रोगों का वर्णन पशुपालन में हितकर हो सकता है।

मूत्र का न निकलना या कम निकलना

उत्सर्जन तन्त्र का यह सर्वाधिक महत्वपूर्ण रोग है जो पशुपालक स्वयं पहचान सकता है। यह वृक्क (किडनी) में संक्रमण के कारण हो सकता है जो प्रायः लेप्टोस्पाइरा या कोराइनीबैक्टेरियम नामक जीवाणु के कारण होता है। मूत्र का न निकलना पथरी के कारण, यूरेटर नामक मूत्र को वृक्क से ब्लेडर तक पहुँचाने वाली नली या ब्लेडर से शरीर के बाहर निकालने वाली यूरेथ्रा नामक नली के बन्द हो जाने के कारण भी हो सकता है। प्रायः मूत्र बूंद–बूंद कर, कष्ट के साथ निकलना है।

मूत्र के सामान्य रंग में परिवर्तन हो जाता है। यह गाढ़ा सफेद, पीला, लाल या भूरा हो सकता है। इसकी गंध में भी परिवर्तन हो जाता है। इन रोगों में पशु मूत्र उत्सर्जन की स्थिति में देर तक खड़ा रहता है।

उसे मूत्र उत्सर्जन के समय दर्द होता है। गोबर के रास्ते हाथ डालकर जाँच करने पर ब्लाडर भरा महसूस होता है। कभी–कभी मूत्र में मवाद भी आता है। इस रोग की पहचान तो लक्षणों के आधार पर हो जाती है किन्तु वास्तविक कारण जानने हेतु मूत्र की प्रयोगशाला में संक्रमण या पथरी हेतु जाँच आवश्यक है। छोटे पशुओं में एक्स–रे द्वारा पथरी का पता लगाया जा सकता है।

संक्रमण की दशा में पेनिसिलीन 10 हजार यूनिट प्रति कि.ग्रा. शरीर भार मात्रा में देना चाहिए। मूत्र की अम्लता बढ़ाने हेतु सोडियम फॉस्फेट 100 ग्राम से 2 कि.ग्रा. तक पशु के शरीर भार के अनुसार देना चाहिए और कुत्तों में क्षारीयता बढ़ाने हेतु औषधि देनी चाहिए। पथरी को घोलने हेतु सिस्टोन या ऐसा ही अन्य कोई पाउडर की उचित मात्रा का प्रयोग कर सकते हैं और कुशल पशु चिकित्सक ऑपरेशन द्वारा पथरी निकाल भी सकते हैं।

❑❑❑

8 हृदय एवं रूधिर तन्त्र के रोग

गाय भैसों में हृदय एवं रूधिर तन्त्र के रोग एक सामान्य पशु सेवक द्वारा बहुत कम पहचाने जाते हैं। घोड़े विशिष्ट रूप से रेस के घोड़े तथा कठिन काम के लिए उपयोग किये जाने वाले बैल कभी–कभी हृदय सम्बन्धी रोगों से ग्रस्त होते हैं। कुत्तों में विभिन्न प्रकार के हृदय एवं रूधिर सम्बन्धी रोग पाये जाते हैं, जिनका निदान इलैक्ट्रोकार्डियोग्राफी, एंजियोग्राफी आदि की सहायता से कर सकते हैं। गाय–भैसों में ट्रोमेटिक पेरीकार्डाइटिस होने की सम्भावना भी रहती है।

हृदय एवं रूधिर तंत्र के रोगों में आराम या अल्प श्रम के समय भी श्वसन कष्ट, कमर का उठा रहना तथा कोहनी का फैला होना आदि हृदय रोग के सामान्य लक्षण हैं। इसके अतिरिक्त हृदय गति असामान्य होना तथा शीघ्रता से होना गम्भीर हृदय रोग का परिचायक है। ट्रोमेटिक पेरीकार्डाइटिस में ऐसा प्रतीत होता है जैसे हृदय को बाल्टी में डूबो दिया गया है या हृदय के चारों ओर कपड़ा लपेट दिया गया है। अगले दोनों पैरों में मध्य पानी भर जाता है तथा जुगुलर नाड़ी पर गति देखी जा सकती है।

पशुओं में हृदय एवं रूधिर तन्त्र के रोगों की पहचान न होने के कारण प्रायः रोग का पता नहीं लग पाता और पशु की मृत्यु हो जाती है। पशुओं के हृदय में भी जन्मजात छिद्र हो सकता है जिससे स्वच्छ रक्त में कार्बन डाइऑक्साइड युक्त रूधिर मिल जाता है और पशु को साइनोसिस नामक बीमारी हो जाती है और पशु कम उम्र में ही मर जाते हैं। इसी प्रकार पशुओं को अटैक भी पड़ सकता है। किन्तु प्रायः पहचान नहीं हो पाती है। बैलों में भार वाहन में उपयोग के कारण हृदय का बड़ा हो जाना और कुत्तों में ब्लड–प्रेसर बढ़ जाना सामान्य रोग है किन्तु प्रायः हम इनका ठीक प्रकार निदान एवं उपचार नहीं कर पाते है। हृदय रोगों में पशु परिश्रम नहीं कर पाता, नाड़ी गति तेज या धीमी हो जाती है और शरीर के निचले भागों में पानी भर जाता है। कुछ प्रमुख हृदय रोग निम्नवत हैः

1. हृदय की चोटः हृदय में प्रायः पेट के रास्ते कोई नुकीली चीज प्रवेश कर जाती है और घाव कर देती है। इससे हृदय की मांसपेशियों का संक्रमण हो जाता है और हृदय ठीक प्रकार काम नहीं कर पाता है। यह प्रायः गाय–भैसों में ब्याने के बाद होता है। पशु को ज्वर बना रहता है जो श्रेष्ठतम उपचार के बाद भी ठीक नहीं होता है। रोगी पशु दुबला हो जाता है। ठीक

प्रकार चल नहीं पाता। उठने–बैठने में तकलीफ होती है और अगले पैरों के बीच में पानी भर जाता है। आला (स्टेथोस्कोप) से जाँच करने पर ऐसा लगता है जैसे हृदय के चारों ओर पानी भरा है। थोड़ा–थोड़ा पेशाब होता है और पशु अगले पैर बाहर की ओर रखकर खड़ा होता है। रोग की पहचान लक्षणों, रोग के इतिहास एवं रक्त परीक्षण में बढ़ी हुई न्यूट्रोफिल के द्वारा करते हैं। उपचार हेतु आपरेशन ही एक मात्र उपाय है जो अत्यन्त कुशल पशु सर्जन ही कर सकता है।

2. ट्रोमेरिट पेरीकार्डाइटिसः ट्रोमेरिट पेरीकार्डाइटिस तथा मायोकार्डाइटिस सामान्यतः गाय–भैसों में होते हैं। जब कोई तीक्ष्ण बाहरी वस्तु रेटिकुलम, पेरीटोनियम तथा डाइफ्राम को पार कर जाती है तथा हृदय तक पहुँच जाती है तब यह रोग होता और हृदय की थैली में भारी मात्रा में तरल पदार्थ भर जाता है।

लक्षण

बार–बार होने वाला अपच, अफरा तथा पेट की गति रूक जाती है। छाती में दर्द के लक्षण आते हैं तथा दर्द के भाव मुख पर स्पष्ट दिखाई देते हैं। उठी हुई पीठ, खिंची गर्दन, फैली हुई कोहनी तथा चलने की अनिच्छा होना इस रोग के लक्षण हैं। शुरूआती अवस्था में स्टेथोस्कोप से हृदय ध्वनि सुनने पर हृदय की भित्तियों की रगड़ सुनाई देती है। मवाद भर जाने के पश्चात् हृदय–ध्वनियाँ अस्पष्ट हो जाती हैं। जब हृदय की धड़कन थकान के कारण बढ़ जाती है, रगड़ की ध्वनियाँ सुनाई देती हैं। पशु ध्यानपूर्वक उठता तथा खड़ा होता है। कम मात्रा में मूत्र त्याग करता है तथा दर्द के लक्षण अधिक स्पष्ट प्रतीत होते हैं। दवाईयों द्वारा उपचार निष्फल है। किसी तजुर्बेकार सर्जन द्वारा तीक्ष्ण वस्तु को हटाने के पश्चात् औषधि एवं श्रेष्ठ देखरेख द्वारा ही उपचार सम्भव है, परन्तु इससे पशु के बचने की सम्भावना काफी कम होती है। लक्षणों को कम करने हेतु ऊँची खुराक में दीर्घ क्रियाशील प्रति जैविक (Antibiotic) औषधि देना चाहिए।

3. हृदय का रूकना या हार्ट फेलः यह प्रायः घातक रोगों में ऑपरेशन के समय या चोट लगने से होता है। कभी–कभी अधिक मात्रा में बेहोशी की दवा के कारण भी हृदय गति रूक जाती है। रोगी पशु का खून नीला एवं गाढ़ा होने लगता है। श्वसन गति तेज एवं कम गहराई की हो जाती है। आँखो की पुतली फैल जाती है तथा नाड़ी कम ताकत की एवं असामान्य हो जाती है। यह रोग कभी–कभी दुग्ध ज्वर के उपचार के समय कैल्शियम अंतःशिरा विधि से देते समय भी हो जाता है। यह रोग घातक है और तुरन्त कार्यवाही करनी चाहिए। अतः लक्षण पहचानते ही यदि बेहोशी की दवा दी जा रही है या कैल्शियम चढ़ाया जा रहा है तो तुरन्त रोक देना चाहिए।

बेहोशी की दवा का प्रतिकारक एवं नार्मल सैलाइन देना चाहिए। कृत्रिम विधि से श्वसन चलाना चाहिए, छाती की मालिश करनी चाहिए एवं एड्रीनलीन या एपीनेफ्रिन का इन्जेक्शन लगाना चाहिए।

कभी–कभी शरीर में कैल्शियम की कमी (दुग्ध ज्वर) के कारण या अत्यधिक रक्त श्राव के बाद भी हार्ट फेल होने लगता है। ऐसी दशा में रोग की पहचान होते ही आवश्यकतानुसार रक्त या कैल्शियम की उचित मात्रा अंतःशिरा विधि से चढ़ानी चाहिए। हृदय रोगों के बाद या हृदय के कमजोर होने पर कुछ टॉनिक दे सकते हैं जो टिंचर डिजिटेलिस 8 मि.ली., टिंचर नक्स वोमिका 16 मि.ली., टिंचर जिन्जिवेरिस 30 मि.ली. को 125 मि.ली. पानी में मिलाकर एक से दो सप्ताह तक दिया जाता है। कुत्तों में डिजॉक्स नामक इन्जैक्सन भी दिया जा सकता है। रक्त की कमी होने पर दो ग्राम फेरस सल्फेट एक माह तक या कोफेक्यु की दो गोलियाँ प्रातः–सायं एक माह तक दी जा सकती हैं या फेरीटॉस, जेक्टोफर, इम्फेरान आदि के इन्जेक्सन उचित मात्रा में लगा सकते हैं।

बड़े पशुओं में हृदय का रूक जाना कम पाया जाता है। यह प्रायः शल्य क्रिया के साथ अकस्मात हृदय विफलता के कारण हो सकता है। इसके अतिरिक्त यह दिमाग की बीमारियों के कारण तन्त्रिका तन्त्र की विफलता से भी हो सकता है। यह तीव्र तथा अधिक अन्तःशिरीय एनस्थीसिया तथा उपस्थित अन्य हृदय रोग के आवेगकारी प्रभाव के कारण तो होता ही है। हृदय रोगों में खून गहरा हो जाता है जो कि सायनोसिस का संकेत है। इसके अतिरिक्त श्वसन की गति तथा सघनता बढ़ जाती है और शरीर शिथिल हो जाता है तथा नाड़ी अनियमित हो जाती है।

उपचार

हृदय के रूकने के तीन मिनट के अन्दर मस्तिष्क का अपरिवर्तनीय नाश हो जाता है। अतः शीघ्रता से पशु की जान बचाने हेतु निम्न उपाय करने चाहिएः

1. हृदय ध्वनियों की उपस्थिति अथवा अनुपस्थिति को आराम देकर ठीक करें।
2. एन्सथिसिया अथवा अन्तःशिरीय तरल देना रोक दें।
3. छोटे पशुओं के पीछे के पैर उठा दें तथा सिर नीचे की ओर कर दें।
4. ऑक्सीजन द्वारा फेफड़ों को वायु प्रदान करें।
5. अप्राकृतिक श्वसन तथा हृदय की बाहर से मालिश, छोटे पशुओं में लाभकारी होती है।
6. एपीनेफ्रिन अथवा एड्रीनलिन का 1:1000 घोल, 1 मिली0 अन्तःहृदय विधि से दें।

रक्तस्राव तथा शरीर में पानी की कमी की स्थिति में शरीर के तापमान से थोड़ा ज्यादा गर्म, डेक्सट्रोस–सैलाइन अथवा रक्त चढ़ायें।

4. हृदय पेशीय शोथः कुछ रोग जैसे दीर्घस्थायी एनीमिया, विटामिन ई0 तथा कॉपर की कमी, कुछ विषाक्ताओं तथा खुरपका–मुंहपका आदि के प्रभाव के कारण मायोकार्डियम दुर्बल हो जाती है। ऐसे में पशु परिश्रम सहन नहीं कर पाता। हल्का परिश्रम भी हृदय गति बढ़ा देता है और कठिन परिश्रम से हृदय गति समाप्त हो जाती है। उपचार हेतु घोड़े तथा गाय के लिए टिंचर डिजिटैलिस 8 मिली0, टिंचर नक्स वोमिका 16 मिली0, टिंचर जिंजीबेरिस 30 मिली0 तथा पानी 125 मिली0 प्रतिदिन एक बार, 8 दिन के लिए दिया जा सकता है। उपरोक्त के अतिरिक्त डिजिटैलिस घोड़े तथा गाय में 15–60 मि.ली. अन्तःपेशीय व अधोत्वचीय तथा कुत्तों में 1–10 मि.ली., अन्तःपेशीय व अधोत्वचीय विधि से दे सकते हैं। हृदय रोग तथा एरिदमिया के नियंत्रण के लिए डिजिटेलिस अब तक की सबसे ज्यादा स्वीकृत दवा है। घोड़े तथा गाय में टिंचर सिला 15 मिली0 तथा टिंचर डिजिटैलिस 10 मिली0 का मिश्रण दिन में एक बार, 8 दिन के लिए भी दे सकते हैं। कुत्तों में टिंचर सिला 0.5 मिली0, अमोनियम अरोम 1.5 मिली0, सिरप 10 मिली0 तथा पानी 20 मिली0 दिन में 2 बार, एक हफ्ते के लिए दिया जा सकता है।

रक्तवर्धन (हिमैटिनिक)

यह लौह तत्व की कमी के कारण होने वाले रक्तहीनता में दिये जाते हैं। इसका अनुमान हिमोग्लोबिन की मात्रानुसार करें तथा सुधार जानने के लिए समयबद्ध रूप से हिमोग्लोबिन की जाँच करते रहना चाहिए। हिमोग्लोबिन बढ़ाने हेतु घोड़े तथा गाय में फैरिक सल्फेट 5 ग्राम, कॉपर सल्फेट 0.2 ग्राम, कोबाल्ट सल्फेट 0.2 ग्राम तथा गुड़ पर्याप्त मात्रा में चटनी के रूप में प्रतिदिन एक बार, 10 दिन के लिए प्रयोग करना चाहिए। इसके अतिरिक्त खून की मात्रा बढ़ाने हेतु बाजार में उपलब्ध एनोरेशेन की 2–4 गोली या फेरीटॉस अथवा इमफेरोन का इंजेक्सन, विटामिन बी12 के साथ घोड़े तथा गाय में 10 मिली0 अन्तःपेशीय विधि से हफ्ते में दो बार और कुत्तो में 3 मिली0 अन्तःपेशीय विधि से हफ्ते में दो बार दिया जा सकता है। कुत्तों के लिए फैरिक अमोनियम सिट्रेट 5 ग्राम, सिरप 20 मिली0 तथा पानी 125 मिली0 एक चम्मच, दिन में दो बार भी दे सकते है। फैराडौल, टोनोफेरॉन, मीनोलॉड, लोवोफोरीना, मारकोफैरौल तथा डैक्सोरेंज में से किसी भी दवा की 10 चम्मच दिन में दो बार बड़े पशु में, 1 चम्मच दो बार छोटे पशु में देना चाहिए। फीसविट कैप्सूल्स या रेटिकल की एक गोली दिन में दो बार भी दे सकते हैं तथा आहार में यकृत का सूप दें तथा

लिव–52 की आवश्यक मात्रा पशु के शरीर भार के अनुसार दे सकते हैं।

दूसरे पशु का रक्त चढ़ाना भी बहुत लाभदायक है। आपतिक रक्त स्राव तथा हीमोलिटिक एनीमिया में जब कि हीमोग्लोबिन का स्तर 4 ग्राम प्रतिशत से भी कम हो जाता है, ऐसी स्थितियों में पशु की जान रक्त चढ़ा कर बचा सकते हैं। गाय में पहली बार के रक्त प्रदान में क्रॉस मैचिंग आवश्यक नहीं है। यदि समय हो तो कुत्तों में रक्त समूह की जाँच करें। ए–निगेटिव ग्राही में ए–निगेटिव दाता का ही रक्त मिलना चाहिए। रक्तदान से पूर्व जाँच हेतु, दाता की लाल रक्त कोशिकाओं को ग्राही के सीरम में परखनली में जाँचें। 30 मिनट के अन्दर रक्त कोशिकाएं टूटनी नहीं चाहिए। ग्राही की लाल रक्त कोशिकाएं भी इसी प्रकार दाता के सीरम में जाँच सकते हैं, परन्तु पहली जाँच अधिक आवश्यक है। यदि दाता के एक से अधिक बार रक्त प्रदान करना हो तो क्रॉस मैचिंग अवश्य करनी चाहिए।

गाय में 4–7 मिली0 प्रति कि.ग्रा. शरीर भार तथा औसत 2 ली0 तक रक्त प्रदान कर सकते हैं, जबकि कुत्तों में 5 मिली0 प्रति कि.ग्रा. औसत 100 मिली0 तक। झाग के निरोध के लिए शीशी को घुमाते रहें, यदि झाग बन जाए तो एक जीवाणुरहित पट्टी (फिल्टर) से छान लें। रक्त विशेष परिस्थितियों में ही चढ़ाना चाहिए तथा रक्त चढ़ाते समय पशु का ठीक प्रकार से परीक्षण भी करते रहना चाहिए। इसका कोई और दुष्प्रभाव नहीं है। रक्त चढ़ाते समय रक्त को शरीर के तापमान पर लेना चाहिए। इसे अन्तःशिरीय तथा आपातकाल में अन्तः पेरीटोनियम विधि से दे सकते हैं। कुछ स्थितियों में ग्राही बेचैनी तथा कंपन जैसे लक्षण दिखाते हैं। रक्त ग्रहण की प्रतिक्रिया प्रदान के 10–14 दिन पश्चात् भी हो सकती है तथा वह साधारण नियंत्रित की जा सकती है।

❑❑❑

9 तन्त्रिका तन्त्र के रोग

पशु का तन्त्रिका तन्त्र पशु की सभी क्रियाओं एवं अभिक्रियाओं पर नियन्त्रण रखने का कार्य करता है। इसमें होने वाले रोग अंग विशेष पर या सम्पूर्ण शरीर पर प्रभाव डाल सकते हैं। तन्त्रिका तन्त्र द्वारा चलना, खाना, सांस लेना, गंध का ज्ञान, आँखों की क्रिया, ध्वनि के प्रति संवेदनशीलता, उत्सर्जन एवं प्रत्येक अंग की हरकत संचालित होती है। अतः इस तन्त्र के रोग की सटीक पहचान हेतु पशु की प्रत्येक कार्यवाही जैसे चलना, खाना आदि का ध्यानपूर्वक अध्ययन करना चाहिए। ज्यादातर तन्त्रिका तन्त्र के रोग या तो आहार में विटामिन या खनिज लवण की कमी या विषाक्त पदार्थ के सेवन से होते हैं। कभी–कभी परजीवी, जीवाणु या विषाणु के संक्रमण से भी ये रोग हो सकते हैं। उम्र अधिक होने पर कैंसर हो सकता है तथा घोड़ों में दो वर्ष की आयु के बाद रीड़ में गड़बड़ी के कारण भी तन्त्रिका तन्त्र के रोग हो सकते हैं।

2. मस्तिष्क शोध (एनसेफेलाइटिस): मस्तिष्क शोध संक्रमण, एलर्जी या विषाक्तता के कारण हो सकता है। प्रभावित पशु या तो उग्र हो जाता है या सुस्त हो सकता तथा अन्त में लकवा उत्पन्न होता है। यदि उपचार न हो सके तो पशु की मृत्यु भी हो सकती है। यह रोग अनेक जीवाणुओं जैसे क्लोस्ट्रीडियम, सालमोनेल्ला या लीस्टीरिया के संक्रमण से हो सकता है। इसके अतिरिक्त अलार्क (रैबीज) व जापानी मस्तिष्क शोध जैसे विषाणु रोग, कुमरी नामक परजीवी रोग, बाटुलिज्म नामक विष, सीसा जैसी धातु, भूसे की एलर्जी इत्यादि के कारण भी यह रोग होता है। इस प्रकार के रोगों की पहचान तेज ज्वर, भूख न लगना, रोग के प्रारम्भ में उत्तेजना और बाद में सुस्ती, फिर लकवा और फिर मृत्यु से करते हैं। पशु सिर दीवार पर मारता है, निरूद्धेश्य इधर–उधर घूमता है। शरीर में कंपन होता है। पशु पैर जमीन पर मारता है और लड़खड़ा कर चलता है।

रोग का उपचार रोग कारक पर निर्भर करता है जैसे अलार्क या रैबीज है तो एक बार लक्षण प्रदर्शित होने पर उपचार सम्भव नहीं है। जीवाणु जनित रोग होने पर प्रतिजैविक औषधि से उपचार सम्भव है। प्रतिजैविक औषधि 7 से 10 दिन तक विटामिन 'ए' और 'सी' के साथ प्रयोग करते हैं और लक्षणों को कम करने वाली औषधि भी देनी चाहिए। इसी प्रकार यदि विषाक्तता है तो पहले कारण हटाए, फिर विषाक्तता समाप्त करने हेतु उचित दवा का प्रयोग करें। कैल्शियम आदि ऐसे तत्व हैं जो सभी

प्रकार की विषाक्तता में प्रयुक्त हो सकते हैं। एलर्जी में एलर्जी के कारण को दूरकर, एविल इत्यादि एलर्जी के प्रभाव को समाप्त करने वाली औषधि देना चाहिए। परजीवी रोग में परजीवीनाशक का प्रयोग ठीक रहता है।

3. मस्तिष्क झिल्ली शोथः मस्तिष्क खोपड़ी के भीतर एक झिल्ली से ढका रहता है जिससे शोध (संक्रमण) हो जाये तो पशु को ज्वर हो जाता है व पेशी अकड़ जाती है। यह बछड़ों में गलत तरीके से की गयी सींग नाशन के कारण हो सकता है। लेप्टोस्पाइरा, लीस्टीरिया आदि जीवाणु या हरपीज नामक विषाणु के प्रकोप से भी यह रोग हो सकता है। सिर में हुए घाव से भी यह रोग हो सकता है। इस रोग में पशु को तेज ज्वर व पेशियों में कठोरता आ जाती है। पशु इधर–उधर निरूद्धेश्य घूमता है, लंगड़ाता है एवं चाल में लड़खड़ाहट आ जाती है। सिर को नाद पर या किसी भी सहारे के स्थान पर टिका देता है। पशु को खड़े होने में कठिनाई होती है। रोग के प्रारम्भ में उत्तेजना और बाद में लकवा हो जाता है। रोग की पहचान लक्षण के आधार पर एवं मस्तिष्क के तरल (सी.एस.एफ.) की जाँच कर करते हैं। मस्तिष्क तरल में प्रोटीन, श्वेत रूधिर कणिका तथा शकर्रा की मात्रा बढ़ जाती है। उपचार हेतु प्रारम्भिक रोग जीवाणु, विषाणु या घाव आदि है, को ठीक करते हैं, फिर प्रतिजैविक, डेक्सामिथासोन या प्रेडिनिसोलान, विटामिन 'ए' एवं 'सी तथा अंतःशिरा विधि से नार्मल सेलाइन देना ठीक रहता है।

4. रीड़ का रोगः पशु के फिसलने, अन्य व्यक्ति द्वारा या पशु द्वारा चोट पहुँचाने या दुर्घटना के कारण रीड़ में चोट पहुंच सकती है। कभी–कभी परजीवी भी रीड़ में पहुंचकर रोग का कारक बनते हैं, जैसे गोलकृमि या फीताकृति आदि। इस प्रकार के रोगी पशु को खड़ा होने में कठिनाई होती है, पैर कमजोर हो जाते है, चाल लड़खड़ाहट युक्त होती है और पशु को मल (गोबर) या मूत्र त्याग में कठिनाई होती है। रोग की पहचान लक्षणों के आधार पर या एक्स–रे द्वारा करते हैं। उपचार हेतु रोग विशेष जैसे परजीवी का उपचार या चोट का उपचार करने के पश्चात् विटामिन बी–काम्पलैक्स का इन्जेक्सन लगाते हैं। इन्फ्रारेड किरणों की सिकाई या गर्म सिकाई या आयोडेक्स आदि लगाकर अंग विशेष पर रक्त का दौरा बढ़ाते हैं।

5. रेडियल तंत्रिका का लकवाः इसमें पशु के आगे के एक अथवा दोनों पैरों का लकवा हो जाता है तथा वह शरीर भार सह नहीं पाता है। यह उस दशा में भी हो जाता है जब पशु को अधिक समय के लिए गिराया जाये अथवा पशु कहीं से गिर जाये। इस कारणवश रेडिल तन्त्रिका पर दबाव

पड़ता है तथा लकवा हो जाता है। यह स्थिति लिनिमैंट अमोनिया की मालिश, सिकाई तथा टोनोफॉस एवं न्यूरोबियॉन के इन्जेक्सन द्वारा नियंत्रित की जा सकती है। कभी–कभी यह रोग पूर्ण रूप से ठीक होने में बहुत लम्बा समय लेती है। टेंडन फटने जैसी स्थितियों का उपचार विटामिन बी–12 के इंजैक्सन द्वारा किया जा सकता है। इससे सुधार शीघ्र होता है तथा पशु कुछ ही घंटों में खड़ा हो जाता है।

तंत्रिका तंत्र व्याधि के लक्षण

तंत्रिका तंत्र की व्याधि में पशु के स्वभाव में बदलाव होता है। पशु अत्यधिक उत्तेजना दर्शाता है या उसे अवसाद (सुस्त, बेहोश) हो जाता है। पशु की चाल असाधारण हो जाती है तथा पशु गोल घूमने लगता है। ऐसे पशु में लकवा की संभावना भी होती है। कभी–कभी गुदा तथा मूत्राशय की स्फिंकटर पेशियों का अभियंत्रण तथा वेगस पर चोट के कारण आँतों की गति रूक जाती है। पशु सेवक विभिन्न लक्षणों जैसे स्वभाव में बदलाव, बेचैनी, चाल, अंधेपन के कारण टकराना आदि का निरीक्षण कर इस व्याधि का स्पष्टीकरण करते हैं। भारत जैसे देश में किसी भी प्रकार के तंत्रिका तंत्र रोग में रेबीज की संभावना हो सकती है क्योंकि भारत में आवारा कुत्तों की अधिकता के कारण रेबीज बहुत प्रचलित है। मुख के परीक्षण के समय विशेषकर कुत्तों में सुरक्षा के लिए दस्ताने अवश्य पहनने चाहिए। विशिष्ट बीमारियाँ जैसे सर्रा (ट्रिपैनोसोमोसिस), लिस्टीरियोसिस, बोटुलिस्म (विषाक्तता) चयापचय रोग आदि की संभावना को भी ध्यान में रखकर अन्तिम निर्णय लेना चाहिए। तंत्रिका तंत्र के रोग को समझने के लिए मस्तिष्क रस (C.S.F) की जाँच सहायक होती है। यह एक विशिष्ट परीक्षण है तथा अनेक स्थितियों में महत्वपूर्ण है।

मस्तिष्क रस (C.S.F) निकालने का स्थानः

1. ऑक्सीपिटल (सिर) के पीछेः पशु को गिरा लें तथा लिटा दें। कुत्तों में यह स्थान सुविधाजनक है। उचित प्रतिबन्ध के पश्चात् पशु का सिर, जितना हो सके, आगे तथा नीचे की ओर मोड़ें। स्थान को रोगाणुरहित कर लें। एक तीक्ष्ण 10–15 सेमी0 लम्बी सुई, जिसका व्यास 1.5 मिमी0 हो, गाय लिए उपयोगी होती है। सुई सिर के पीछे, ऑक्सीपिटल के नीचे, फोरामेन मैगनम में डालें। यदि सुई सही स्थान पर पहुँच गयी है तो साफ सेरिब्रोस्पाईनल तरल सूई द्वारा धीरे–धीरे निकालता है। मस्तिष्क रस सूखी रोगाणुरहित सिरिंज से ही निकालें तथा एक शीशी में इकठ्ठा करें। कुत्तों के लिए 20 गाज की 3 इंच लम्बी सुई इस्तेमाल करें। कुत्तों में सुई की लम्बाई पशु की उम्र तथा आकार पर निर्भर करती है। हर स्थिति में नई तथा रोगाणुरहित सुई ही इस्तेमाल करें।

2. लम्बरः यह स्थान अधिक सुविधाजनक है तथा इस स्थान से मस्तिष्क रस पशु जब खड़ा हो तो भी ले सकते हैं। यदि पशु शान्त न हो तो उसे गिरा लें तथा नियंत्रित कर लें। सुई आखिरी लम्बर रीड़ तथा सैक्रम रीड़ के बीच में खाली स्थान में डालें। सुई पहले सीधी (खड़ी) तथा हल्की तिरछी करते हुए डालें। मस्तिष्क रस का परीक्षण प्रोटीन के लिए, कोशिकाएं गिनने, ग्लूकोज का स्तर जानने, स्मीयर परीक्षण, सूक्ष्म जीव तथा ट्रिपैनोसोमा के लिए किया जाता है।

तंत्रिका तंत्र के अवसाद के उपचार हेतु घोड़े तथा गाय में निम्न में से किसी एक का उपयोग कर सकते हैं:

1. क्लोरल हाईड्रास के 30 ग्राम को 125 मिली0 पानी व 500 मिली0 लिनि तेल में मिलाकर दे सकते हैं।
2. अमोनियम ब्रोमाइड तथा सोडियम या पोटेशियम ब्रोमाइड के 4–4 ग्राम को पर्याप्त गुड़ में मिलाकर दे सकते हैं।
3. क्लोरल हाईड्रास के 30 ग्राम को 200 मिली0 पानी में घोलकर धीरे–धीरे अन्तःशिरीय विधि से दिया जा सकता है।
4. लारजैक्टिल को 1 मि.ग्रा. प्रति कि.ग्रा. शरीर भार की दर से अंतःपेशीय विधि से इन्जैक्सन द्वारा दिया जा सकता है।

कुत्तों के लिए इन्जेक्सन

लारजैक्टिल 25 प्रतिशत घोल 1–2 मिली0 अन्तःपेशीय या अन्तःशिरीय या 25 मि.ग्रा. गोली, दिन में दो बार दिया जा सकता है। इसके अतिरिक्त इन्जेक्सन डाईजापाम 1–3 मिली0 अन्तःपेशीय या अन्तःशिरीय विधि से, इन्जेक्सन सिक्विल (साराभाई) 20–40 मि.ग्रा. अधोत्वचीय या अन्तःशिरीय विधि से दे सकते हैं। इसके अतिरिक्त सिलेडिन की गोली 30–300 मि.ग्रा. भी दे सकते हैं।

कुत्तों में मिरगीः यह कुत्तों में सामान्य है तथा इसका कारण स्पष्ट नहीं है। मिरगी के दौरों की तीव्रता तथा स्थिरता अलग–अलग होती है। इसके लम्बे समय तक उपचार की आवश्यकता है। इसे निम्न में से कोई भी एक औषधि दे सकते हैं तथा खुराक पशु के भार के अनुसार निर्धारित करना चाहिए।

1. डिलिटिन कैप. – 100 मि.ग्रा.
2. एपिलैप्टि एल. – 100 मि.ग्रा. कैप्सूल
3. एपिलैक्स – 200 मि.ग्रा.गोली
4. एपसोलिन – 100 मि.ग्रा. गोली
5. मायसोलिन – 250 मि.ग्रा. गोली

6. मैग्नीशियम फॉस्फेट 6 × एक होम्योपैथिक दवा है, जिसे भी इस्तेमाल किया जा सकता है।

तंत्रिका उत्तेजक टॉनिक

यह विभिन्न प्रकार के पैराप्लेजिया, कमजोरी, अवसाद, ऑटोनॉमिक दुष्क्रिया के कारण होने वाली आंतों की गतिहीनता, एनस्थीसिया के उपरान्त तथा कुछ विशिष्ट तंत्रिका अवसाद में उपयोगी है। इस प्रकार के टॉनिक निम्न हैं:

1. *कैफीन सिट्रेट*– घोड़े तथा गाय में 2–4 मि.ग्रा. प्रति कि.ग्रा. शरीर भार अधोत्वचीय विधि से तथा कुत्तों में 1–2 मि.ग्रा. प्रति कि.ग्रा. शरीर भार अधोत्वचीय विधि से देना चाहिए।
2. *एमफीटामीन*– घोड़े तथा गाय 2–4 मि.ग्रा. प्रति कि.ग्रा. शरीर भार अधोत्वचीय विधि से कुत्तों में 1–4 मि.ग्रा. प्रति कि.ग्रा. शरीर भार अधोत्वचीय विधि से देना चाहिए।
3. *स्ट्रिकनीन हाइड्रोक्लोराइड (स्पाईनल कॉड उत्तेजक)*– घोड़े तथा गाय में 15–60 मि.ग्रा. तथा कुत्ते में 0.3–1.0 मि.ग्रा. देना चाहिए।

इसके अतिरिक्त कैल्शियम युक्त दवाईयाँ जैसे माईफेक्स (फाइजर) कैलबोरल (रोन पी) या कैलमैक्स (रैनबैक्सी) सामान्यतः उपयोग किये जाने वाले तंत्रिका उत्तेजक हैं। कुत्तों में एरिस्टोन्यूरौल 1 कैप्सूल दिन में दो बार 10 दिन के लिए या टोनाबोलिन तरल एक चम्मच प्रतिदिन भी पिला सकते हैं।

❑❑❑

10 माँस पेशीय रोग

पेशियाँ शरीर के संचालन का कार्य करती हैं। पेशियों के रोगग्रस्त होने पर पशु का चलना, उठना, बैठना बाधित हो जाता है और पशु उत्पादन हेतु अयोग्य हो जाता है। पेशियों में दर्द, खिंचाव, अकड़न एवं सड़न हो सकती है जो विभिन्न कारणों से होगी। अतः इन कारणों को समझना अति आवश्यक है। कई बार कैल्शियम, फॉस्फोरस जैसे खनिज की कमी भी पेशियों के रोग कारक हो सकते हैं। अतः उपचार हेतु सभी सम्भावनाओं को ध्यान में रखना चाहिए।

1. पेशियों की सूजनः सूजन का कारण चोट या संक्रमण हो सकता है। संक्रमण में उस विशेष संक्रमण कारक जो जीवाणु, विषाणु, कवक या परजीवी हो सकता है, को उपचारित करने से रोग ठीक हो जाता है। चोट लगने पर यदि घाव है तो उसे साफ कर कोई जीवाणुनाशक मरहम जैसे बेटाडीन क्रीम आदि लगा सकते हैं। यदि पेशियों के मध्य रक्त जम गया है तो हिपेरिन युक्त थ्राबोफोब (आधाम) नामक क्रीम लगाना उचित रहता है। कम सूजन पर आयोडेक्स या रूमालिया आदि लगाने से रक्त संचार बढ़ जाता है और सूजन ठीक हो जाता है।

2. पेशीय शोथः पेशीय शोथ संक्रमण के कारण ही होता है। संक्रमण प्रायः जीवाणु, विषाणु या परजीवी के कारण होता है। शोध में स्थान विशेष पर सूजन, दर्द, कड़ापन, ललाई आदि देखे जा सकते हैं। पेशीय शोथ में मुख द्वारा या इन्जेक्सन द्वारा प्रतिजैविक औषधि के साथ–साथ स्थान विशेष पर रक्त संचार बढ़ाने हेतु आयोडेक्स, रूमालिया आदि का प्रयोग रोग के ठीक होने तक करते हैं।

3. पेशियों का खिंचावः उबड़–खाबड़ जगह पर पशु के चलने या दौड़ने के कारण पेशियों में खिंचाव हो सकता है जिसके कारण पशु को दर्द होता है। पेशियों के खिंचाव में 24–36 घण्टे के भीतर बर्फ की सिकाई हितकर होती है, परन्तु 36 घण्टे के बाद गर्म सिकाई से लाभ मिलता है। आयोडेक्स, मूव, रूमालिया क्रीम आदि 36 घण्टे के बाद ही लगानी चाहिए। इसके अतिरिक्त मायोसाईटिस, पेशियों तथा टेंडन की मोच, रियूमैटिक तथा पेशियों में दर्द आदि पेशीय एवं तंत्रिका तंत्र के रोग हो सकते हैं जिससे चाल में अकड़ तथा लंगड़ापन जैसे लक्षण दिखाई देते हैं। गाय तथा घोड़े

में अमोनिया लिनिमैंट प्रभावित भाग पर लगाना चाहिए तथा कुत्ते व अन्य छोटे पशुओं में रिलैक्जिल या आयोडैक्स या रूमालिया क्रीम लगाना चाहिए या इंफ्रा रेड सिकाई करना चाहिए।

अन्य उपचार

नोवालजीन या बरालगान या सवालजीन या रोनालजीन या जोबिड में से कोई एक को घोड़े तथा गाय में 10–20 मिली0 इन्जेक्सन अन्तःपेशीय विधि से लगाया जा सकता है। कुत्तों में 0.5–1.0 मिली0 इन्जेक्सन अन्तःपेशीय विधि से लगाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त कोई भी दर्द नाशक गोली जिसमें डिक्लोफेनक या पैरासिटामोल आदि हो, की बड़े पशुओं में दो गोली सुबह–शाम व छोटे पशुओं में 1/2 गोली सुबह शाम की दर से खिलाई जा सकती है।

इसके अतिरिक्त होम्योपैथिक उपचार के रूप में रस टॉक्स–200 की 5 बूंद दिन में दो बार, 3 दिन के लिए। मोच तथा भीतरी चोट में, एरिंका–200 भी उपरोक्त की तरह प्रयोग कर सकते हैं। आर्थराइसिस होने पर उपरोक्त उपचार के साथ इंफ्रा रेड की सिकाई लाभदायक है तथा फिनाइलब्यूटाजोन या एसजीपाईरिन का इन्जेक्सन घोड़े तथा गाय में 10–20 मिली0 अन्तःपेशीय विधि से 1–2 दिन के लिये दिया जा सकता है। कुत्तों में 2–3 मिली0 इन्जेक्सन अन्तःपेशीय विधि से दिया जा सकता है। इसके अतिरिक्त ट्राइऐक्शन, एसजीपईरिन, सुगानरिल, ऑक्सी–पी, आइबुजेसिक, ऐमफ्लेम–200, 400 या डोलोनेक्स की 1 गोली दिन में दो बार 3–4 दिन के लिए कुत्ते तथा अन्य छोटे पशुओं में दे सकते हैं।

❑❑❑

11 हड्डियों एवं जोड़ों के रोग

पशुओं में हड्डियों के रोग के रूप में प्रायः दुर्घटना के कारण टूट–फूट होती है जिन्हें एक कुशल चिकित्सक छोटे पशुओं में बांस की खपच्चियों से फिट करके ठीक कर सकता है, किन्तु बड़े पशुओं में हड्डियों की टूटन को ठीक कर पाना कठिन होता है और अधिकांश पशुओं में यह टूट एक स्थाई विकार के रूप में रह जाती है। बड़ी टूटन में पशु की मृत्यु हो सकती है किन्तु कई विकार टूटन के अलावा भी हैं जिनका वर्णन समीचीन होगा।

1. अस्थि विकास विकारः जब हड्डियों के विकास में गड़बड़ी हो या उन पर लवण का जमाव ठीक प्रकार न हो जिससे गलत प्रकार की हड्डी बन जाय तो यह विकास विकार कहलाता है। इसमें प्रायः या तो हड्डी लम्बी बन जाती है या इतनी कमजोर बनती है कि टूट जाती है। इस प्रकार के रोग कैल्शियम एवं फॉस्फोरस जैसे लवण या विटामिन–डी की कमी से होते हैं। जब पशु को संतुलित आहार न मिले तो भी यह रोग हो सकता है। सुअर में ताँबा की कमी से भी यह रोग होता है।

इसके अतिरिक्त सीसा, फ्लोरीन आदि की विषाक्तता से भी यह रोग हो सकता है। कुछ पशुओं में जैसे भेड़ के बच्चों में यह आनुवंशिक विकार के कारण होता है। इस रोग के कारण पशु के सामान्य बनावट में फर्क आ जाता है। उसका चलना व खड़े होने का तरीका भी असामान्य होता है। हड्डियाँ जरा सी दबाव में टूट जाती हैं। इस प्रकार के विकारों का उपचार सम्भव नहीं होता किन्तु जब शिशु पशु की बढ़ने की अवस्था हो तभी सावधानीपूर्वक संतुलित आहार देकर रोग होने से बचाया जा सकता है।

2. अस्थि शोथः अस्थि शोध या संक्रमण के कारण पशु को चलने में कष्ट होता है। शोथ की जगह सूजन होती है और दर्द रहता है। इस प्रकार का रोग प्रायः शरीर की विभिन्न अस्थियों के जीवाणुओं द्वारा संक्रमण के कारण होता है। एक सर्वाधिक पाया जाने वाला रोग एक्टिनोमाइकोसिस के कारण होता है जिसमें जबड़ों की हड्डियाँ प्रभावित होती हैं एवं इसे जबड़ाबन्ध रोग कहते हैं। रोग से ग्रसित अस्थि में सूजन आ जाती है वहां अक्सर दर्द होता है। कई बार दर्द रहित सूजन भी होती है जो धीरे–धीरे अनेक दिनों में विकसित होती है। यदि सूजन वाली जगह पर अन्य जीवाणुओं का संक्रमण हो जाय तो मवाद भी बहता दिखता है। कभी–कभी यह संक्रमण

आसपास की मांसपेशियों में भी फैल जाता है। इस रोग के उपचार हेतु सल्फा या प्रति जैविक औषधि 10–15 दिन तक देते हैं इसके साथ–साथ पोटेशियम आयोडाइड को 2 ग्राम 30 दिन तक भी खिलाया जा सकती है। यदि मवाद निकल रहा है तो उस स्थान की प्रतिदिन सफाई करके प्रतिजैविक युक्त मरहम या पाउडर भी लगाना चाहिए।

3. अस्थि कैंसरः यदि अस्थियों में दर्दयुक्त सूजन आयी हो तो उसका प्रयोगशाला में कैंसर हेतु परीक्षण भी करा लेना चाहिए। यह प्रायः विषाणु व जीवाणु, संक्रमण या रासायनिक तत्वों के कारण होता है। इस रोग में हड्डियाँ मुड़ जाती हैं एवं कमजोर हो जाती हैं। हड्डी कहीं पर पतली तो कहीं मोटी हो जाती है और आसानी से टूट सकती है। कभी तो अस्थि का फोड़ा जैसा हो जाता है जो तमाम उपचार के बाद भी ठीक नहीं हो पाता है।

4. रिकेट्सः यह कम उम्र के पशुओं में होने वाला रोग है जो बढ़ती हुयी उम्र में वृद्धि दर के अनुपात में आहारिक कैल्शियम व अन्य लवण की उचित मात्रा में उपलब्धता न होने के कारण हड्डियों के कमजोर रह जाने के कारण होता है। हड्डियाँ लम्बी तो हो जाती है लेकिन उनकी भार सहने की क्षमता में कमी रह जाती है जिसके कारण हड्डियाँ मुड़ जाती है। इस रोग में दांतों की बनावट भी खराब होती है। उपचार हेतु उचित मात्रा में संतुलित आहार के साथ खनिज मिश्रण जैसे एग्रिमिन या रैनमिक्स इत्यादि देना चाहिए। कुत्तों में कैल्सीटोन या ऑस्टोकैल्शियम जैसी दवायें पिलानी चाहिए।

5. अविकसित जोड़ः अनेक पशुओं में हड्डियों के जोड़ बिना किसी संक्रमण के भी अविकसित रह जाते हैं। ऐसा रिकेट्स रोग में, आहार में मैंगनीज की कमी, जिंक की अधिकता, फ्लोरीन की अधिकता या अधिक दिनों तक स्टेरॉइड नामक औषधि के प्रयोग से भी होता है। इसके अतिरिक्त चोट लगने, कूदने से जोड़ों में घाव के कारण तथा आनुवांशिक कारणों से हो सकता हैं। रोगी पशु को चलने व खड़े होने में कठिनाई होती है एवं जोड़ों में दर्द होता है। पशु की उत्पादन क्षमता घट जाती है। रोग की पहचान तो लक्षण के आधार पर हो जाती है किन्तु रोग कारक की सही पहचान हेतु आहार का इतिहास, जोड़ों के पानी की जाँच तथा एक्स–रे परीक्षण आवश्यक होता है। रोग के उपचार हेतु कारण को ठीक करना चाहिए। आहारिक कमियों को संतुलित आहार द्वारा, स्टेरॉइड का प्रयोग यदि हो रहा है तो उसे बन्द कर व चोट के बचाव इत्यादि से किया जा सकता है। कभी–कभी ऑपरेशन द्वारा जोड़ में आयी खराबी को दूर किया जाता है।

6. जोड़ों का शोथः जोड़ों एवं उसमें पाये जाने वाले जल का संक्रमण जोड़ों का शोथ उत्पन्न करते हैं। यह शोथ जीवाणु जैसे ई–कोलाई, इरीसेपलस, स्ट्रेप्टोकोकस, एक्टिनोमाइसीज आदि के संक्रमण या फिर कुछ अत्यन्त तीव्र प्रकार के विषाणु जैसे रैब्डो या हरपीज के संक्रमण से या माइकोप्लाज्मा के संक्रमण से होता है। ऐसे संक्रमण रक्त द्वारा शरीर के अन्य ऊतकों से आते हैं। कभी–कभी शोथ की शुरूआत चोट से भी होती है। जोड़ों का शोथ किसी भी जोड़ में हो सकता है। इसमें जोड़ों में सूजन आ जाती है। पशु चल नही पाता और खड़े होने में पशु के पैरों में दर्द होता है। जब संक्रमण अपनी प्रारम्भिक अवस्था में होता है तो ज्वर भी रहता है। रोग की पहचान लक्षणों के अतिरिक्त एक्स–रे एवं अल्ट्रासाउंड द्वारा तथा जोड़ों के जल की जाँच द्वारा करते हैं जिसमें श्वेत रूधिर कणिका की बढ़ी मात्रा के अतिरिक्त जीवाणु या विषाणु की उपस्थिति हो सकती है। उपचार हेतु प्रतिजैविक औषधि 10–20 दिन तक इन्जेक्सन द्वारा एवं 5–7 दिन तक जोड़ों में प्रयोग करते हैं। पेनिसिलिन, एम्पीसिलिन, क्लोरमफेनीकॉल एवं सल्फा व ट्राइमिथोप्रिम जैसी प्रतिजैविक औषधि का प्रयोग उचित रहता है।

❑❑❑

12 त्वचा सम्बन्धी रोग

त्वचा पशु शरीर में शरीर को सुरक्षा प्रदान करने के अतिरिक्त शरीर का तापमान, जल एवं खनिज की मात्रा को संतुलित एवं वातावरण के प्रति संवेदना बनाए रखने में सहायता प्रदान करती है। त्वचा में आयी खराबी या रोग के कारण पशु की सुंदरता तो प्रभावित होती ही है साथ ही पशु को खुजली एवं असहजता हो जाती है जिससे उसकी उत्पादकता पर असर पड़ता है। त्वचा तथा बाल शरीर के सुरक्षा कवच हैं। शरीर की चिकनाहट तथा चमक उसके अच्छे स्वास्थ्य तथा पोषण की ओर संकेत करती है। त्वचा सम्बन्धी रोग प्रायः व्यवस्था तथा संरक्षक की लापरवाही से हो सकते हैं। इस प्रकार के रोग अपौष्टिक आहार की कमी को भी दर्शाते हैं। त्वचा सम्बन्धी रोग एलर्जी के कारण भी हो सकते हैं। दीर्घस्थायी त्वचा रोग शरीर की प्रतिरोध क्षमता की कमी को दर्शाते है। हार्मोन असंतुलन के कारण त्वचा रंगहीन हो जाती है या गहरे रंग की हो सकती है। त्वचा की खुरचन के परीक्षण के उपरान्त ही उपचार करना चाहिए। दीर्घस्थायी विकार जो कि सूक्ष्मजीवी संक्रमण के कारण जटिल हो गये हो, के निदान के लिए सूक्ष्मजीवी परीक्षण उपयोगी है। त्वचा के विकार घिरे हुए, गोल, अलग–अलग टुकड़ों में अथवा विस्तृत भी हो सकते हैं। इस प्रकार के रोगों के उपचार से पूर्व यह जानना आवश्यक है कि खुजली अथवा दर्द भी है अथवा नहीं।

उपचार के सामान्य सिद्धान्तः

1. यदि संक्रमण ही रोग का कारण हो तो पशु को अलग कर दें।
2. पशु के बाल छोटे कर दें, जिससे दवा का सम्पर्क भली प्रकार से हो।
3. बाद में होने वाले सूक्ष्मजीवी संक्रमण से बचाव करें।
4. तीक्ष्ण चोट तथा खुजली का नियंत्रण करें।
5. पशु को पौष्टिक आहार, विशेषकर सल्फर युक्त अमीनो अम्ल (प्रोटीन) देना चाहिए।

सूक्ष्मजीवी संक्रमण के साथ त्वचा शोथ या डर्मेटाइटिस हो तो निम्न में से कोई दवा संक्रमित स्थान पर लगायी जा सकती हैः

1. टेरामाइसिन 2. लाइकासिन 3. सेवलॉन 4. हिमैक्स
5. एन्टीसैप्टिक 6. वेटक्रीम 7. सोफ्रामाइसिन 8. बीटाडीन

सुधार में तेजी लाने के लिए निम्न में से कोई भी एक इन्जेक्सन लगा सकते हैंः म्यूनोमाइसिन, ओमनामाइसिन, सियोलॉन (आयोडीन युक्त

दूध) आदि। ऐलर्जिक डर्मेटाईटिस के लिए फिनार्गन, एन्टीसन, कैम्बीसन ऑइटमैंट, बेटनोवेट–एन ऑइंटमैंट, बेंकलोमैक–एन ऑइंटमैंट, बैकलेट–सी या एन भी लगा सकते हैं।

उपरोक्त उपचार के साथ तीक्ष्ण खुजली के नियंत्रण के लिए जायलोकेन या जेसीमैन ऑइंटमैंट भी लगाना चाहिए।

1. फोड़ा–फुंसी: त्वचा के रोगों में प्रमुख फोड़ा–फुंसी ही हैं जो शरीर के किसी भी भाग में बाल के उखड़ जाने, खरोंच लगने एवं अन्दरूनी संक्रमण के कारण त्वचा उभरने से होता है। चेचक का प्रभाव भी फुंसी की शक्ल में परिलक्षित होता है। ये किसी एलर्जी के कारण भी हो सकते हैं। जूं, किलनी या कीड़ों के काटने से भी फुंसी हो सकती है। इन्हें देखकर ही पहचाना जा सकता है। उपचार हेतु सर्वप्रथम स्प्रिट आदि से फोड़ा–फुंसी की जगह को दिन में दो बार साफ करना चाहिए और उस पर जेन्सन वायलेट या नीली दवा या ल्यूगाल्स आयोडीन, बेटाडिन, बोकाडिन आदि लगा सकते हैं। इसके अतिरिक्त ट्रापिक्योर आदि का स्प्रे भी कर सकते हैं। यदि अधिक मात्रा में फोड़े–फुंसी हैं तो इन्जेक्सन द्वारा प्रतिजैविक जैसे स्ट्रेप्टोमाइसिन, एम्पिसिलिन या सल्फा औषधि का प्रयोग करना चाहिए।

2. फ्यास या रूसी: त्वचा पर सूखी पपड़ी की अधिकता ही फ्यास है, जो अनेक कारणों से हो सकती है, जैसे पोषण की कमी, जीवाणु, विषाणु, कवक या परजीवी का संक्रमण, एलर्जी, रसायन, सूर्यरश्मि का प्रभाव, विषाक्तता एवं मौसम का प्रभाव। सभी प्रकार से होने वाली फ्यास में त्वचा के ऊपर कम से ज्यादा, शरीर के एक भाग से लेकर सम्पूर्ण शरीर में पपड़ी देखी जा सकती है। ध्यान से देखने पर जहां यह रोग उत्पन्न हो रहा है, वहां पहले लालिमा आती है। वह स्थान आसपास से थोड़ा उभर जाता है फिर उस पर पानी जैसा आता है और फिर पपड़ी पड़ती है जो सूखकर गिरने लगती है। इसको पहचानने हेतु लक्षण पर्याप्त हैं किन्तु कारण जानने हेतु पपड़ी को प्रयोगशाला में परीक्षण हेतु उपयोग में लाया जा सकता है। विभिन्न विधियों के प्रयोग से सही कारण का पता लग सकता है।

उपचार हेतु सर्वप्रथम कारण को दूर करना चाहिए, जैसे जीवाणु हेतु जीवाणु नाशक, परजीवी हेतु परजीवी नाशक का प्रयोग। जहाँ लक्षण है उस स्थान को स्प्रिट से साफकर उस पर नीली दवा (जेन्सन वायोलेट) या रोगकारक के अनुसार दवा लगाना ठीक रहता है।

3. बाल, रोआ या ऊन का झड़ना: पशु के शरीर में बाल, रोआ या ऊन होता है। विभिन्न रोग कारकों के प्रभाव से ये गिरने या झड़ने लगते हैं। कभी–कभी तो शरीर के एक हिस्से से ये बिल्कुल गायब हो जाते हैं। इनका गिरना कवक जैसे रिंगवर्म, विषाक्तता, विषाणु, जीवाणु या परजीवी

के प्रभाव से होता है। इनकी पहचान देखकर तथा विशिष्ट कारक की पहचान त्वचा के प्रयोगशाला में परीक्षण द्वारा करते हैं। उपचार में पोषण की कमी को सन्तुलित आहार द्वारा व विषाक्तता को, विषाक्त पदार्थ हटाकर तथा उसके प्रतिकारक के उपयोग से ठीक करते हैं। इसी प्रकार कवक हेतु बेंजाइल बेंजोएट या ग्रेसियोफलविन नामक औषधियों का प्रयोग करते हैं। परजीवियों के लिए पिपराजीन, एलबेण्डाजोल इत्यादि एवं जीवाणुओं हेतु प्रतिजैविक का प्रयोग कर सकते हैं। हर प्रकार के उपचार के साथ विटामिन ए एवं सी तथा खनिज लवण का प्रयोग लाभकारी होता है।

4. बाल की ग्रन्थि का शोथः कई बार जीवाणुओं के संक्रमण के कारण बाल जिन ग्रन्थियों से उगते हैं उनका शोथ हो जाता है। ऐसा स्टेफाईलोकोकल जीवाणु व डेमोडेक्टिक माइट के कारण होता है। इस रोग की पहचान तो लक्षणो को देखकर ही हो जाती है किन्तु विशिष्ठ कारण की पहचान हेतु प्रयोगशाला परीक्षण करते हैं। सामान्यतया पहले बाल की जड़ों में लालपन आता है, वहाँ खुजली होती है, फिर एक छोटी फुंसी निकलती है और वह फूट जाती है। वहाँ पर एक परत जमा होती है जो फ्यास की तरह होती है और जब वह झड़ती है तो साथ में बाल भी उखड़ जाते हैं। उपचार हेतु उस स्थान पर प्रतिजैविक क्रीम जैसे हिमैक्स, ट्रापिक्योर, बेटाडीन आदि लगाते हैं और यदि यह माइट के कारण है तो एक सप्ताह के अन्तराल पर आइवरमेक्टिन नामक दवा का इन्जेक्शन लगाते हैं। प्रभावित पशु को शेष पशुओं से अलग रखते हैं अन्यथा सभी में रोग हो सकता है।

5. खून जमा होनाः चोट लगने, पशु के गिरने पर या इन्जेक्शन आदि लगाते समय रक्तश्राव के त्वचा या त्वचा के नीचे इकट्ठा होने पर वहां की त्वचा खून के जमाव के कारण काली पड़ जाती है। पशु को बैचेनी होती है और उसका उत्पादन प्रभावित होता है। ऐसा पशु बिक्री के लिए भी अनुपयुक्त हो जाता है। उपचार हेतु चोट आदि लगने वाले दिन 24 घण्टे तक बर्फ या ठण्डा पानी बार–बार लगाते हैं जिससे रक्तश्राव रूक जाय एवं कम फैले, किन्तु 24 घण्टे बाद गर्म सिंकाई करते हैं जिससे जमा खून पिघलकर रक्त वाहिकाओं में वापस चला जाय एवं थ्रम्बोफोब नामक दवा दिन में 4–5 बार लगाते हैं जिससे जमा हुआ रक्त पिघलकर शरीर में अवशोषित हो जाता है।

6. त्वचा का कैंसरः यह शरीर के किसी भी भाग की त्वचा पर हो सकता है। कैंसर वाली त्वचा तेजी से बढ़ती है और यह झुर्रीयुक्त होती है। इसका रंग शेष त्वचा के रंग से अलग होता है। इसे प्रारम्भिक अवस्था में आपरेशन द्वारा निकाल देना चाहिए।

7. एक्जीमाः यद्यपि इसका सही–सही कारण स्पष्ट नहीं है फिर भी ऐसा समझते हैं कि यह एलर्जी के कारण होता हैं। यह सूखा अथवा नम हो सकता है। असंतुलित आहार सम्बन्धी एलर्जी भी हो सकती है। कुत्तों में अधिक शर्करा (कार्बोहाइट्रेड) युक्त आहार भी इस रोग का कारक हो सकता है। कुछ आहार जैसे माँस, दुग्ध आदि की एलर्जी भी इसके कारक हो सकते हैं। अतः आहार में बदलाव करके देखें। कभी–कभी लाभ मिल सकता है। इसे उपचार हेतु आगे वर्णित दवाओं का प्रयोग करते हैं। सेलीसिलिक अम्ल 2 ग्राम, टैनिक अम्ल 2 ग्राम तथा स्प्रिट 30 मिली0 मिलाकर लगाते हैं। साथ में इन्जेक्सन प्लेसेनट्रैक्स का 2 मिली0 अन्तःपेशीय विधि से एक हफ्ते के लिए दे सकते हैं। साथ ही वेगेकॉर्ट, हिमैक्स आइंटमैंट या कैलाड्रिल लोशन भी उपयोग कर सकते हैं। कॉरटिकोस्टिराइड युक्त मरहम पालतू कुत्तों में उपयोगी होता है। इसके अतिरिक्त सिलीनियम तथा अन्य आहारिक कमियों की पूर्ति भी करनी चाहिए।

8. रिंगवर्मः गोल उठे हुए बड़े बटन की तरह के उभार बछड़ों की त्वचा में सामान्य हैं। यह ट्राइकोफायटौन तथा माइक्रोस्पोरम फंफूद द्वारा होते हैं। कभी–कभी स्पष्ट गोल उभार कुत्ते में अनुपस्थित हो सकते हैं, परन्तु बाल झड़ने लगते हैं। यह रिंगवर्म हो सकता है। इसका सटीक निदान वुड फ्लोरोसैन्स लैम्प की सहायता से त्वचा की खुरचन के परीक्षण के द्वारा कर सकते हैं। उपचार रोग की सही पहचान के उपरान्त करना चाहिए। उपचार हेतु वर्णित में से कोई भी मरहम का प्रयोग किया जा सकता है। सैलिसिलिक अम्ल 2 ग्राम, कार्बोलिक अम्ल 2 ग्राम, वैसलीन 30 ग्राम बछड़ों एवं मेमनो आदि पर लगाया जा सकता है। यह मरहम कुत्तों में उपयोग न करें। इस रोग में तेज टिंचर आयोडीन लगाना भी उपयोगी है। पॉवीडीन आयोडीन घोल (बीटाडीन) भी उपयोगी है। इसके अतिरिक्त कोई भी कवकनाशी (Antifungal preparation) का उपयोग कर सकते हैं, जैसे मल्टीफंजिन ऑइंटमैंट, हैमीसिन तरल, डर्मोक्विनॉल क्रीम, टीनाडर्म तरल, माइकोस्टैटिन ऑइंटमैंट, एक्सोरा आइंटमैंट, फैरीडर्म लोशन आदि। यदि घाव अन्दरूनी हो तो ग्रीसियोफल्विन नामक दवा मुख द्वारा खिलाकर उपयोग कर सकते हैं, जैसे ग्रीसोविन बछड़ों में 3 गोली दिन में 2 बार, 10 दिन के लिए या इडीफल्विन कुत्तों में 1 गोली दिन में 3 बार, 15 दिन के लिए खिलाई जा सकती है। भैसों में कॉपर सल्फेट 2 ग्राम प्रतिदिन, 30 दिन तक के प्रयोग से भी लाभ होता है।

9. खुजलीः यह सभी पालतू पशुओं का एक आम त्वचा रोग है। इस रोग में तीक्ष्ण खुजली होती है जिसके कारण रक्तस्राव, बाल झड़ना तथा बाद में जीवाणु संक्रमण भी हो सकता है। यह सारकोप्टिस तथा सोरोप्टिस

माइट द्वारा होता है। यह संक्रमण मनुष्य को भी हो सकता है, यदि मनुष्य पशुओं की देखभाल के समय आवश्यक सुरक्षा का प्रयोग नहीं करता। उपचार हेतु प्रभावित पशु को अलग कर लें। उसके बाल काटने के उपरान्त प्रभावित भाग को साबुन के घोल से साफ कर लें। घाव को ठीक से साफ करने के उपरान्त गोल्डन लोशन दिन में दो बार लगायें। यह एक प्रभावशील उपचार है। इसके अतिरिक्त एस्केबियाल लोशन 2–3 दिन के अन्तराल पर लगायें। कुत्ते एवं बिल्लियों में एस्केबियाल का उपयोग न करें। गैमाक्सेन लोशन, लारेक्जेन ऑइंटमैंट, टैटमोसोल लोशन आदि का प्रयोग कर सकते हैं। शीघ्र लाभ हेतु इन्जेक्सन स्कैबीजमा को घोड़े तथा गाय में 4–5 मिली0 अधोत्वचीय विधि से हफ्ते में दो बार प्रयोग कर सकते हैं तथा कुत्तों में 1–2 मिली0 अधोत्वचीय हफ्ते में दो बार लगा सकते हैं। इन्जेक्सन आईबरमेक्टिन 200 माइक्रो ग्राम प्रति किलो या 1 मिली0 प्रति 50 कि.ग्रा. शरीर भार, अधोत्वचीय विधि से सिर्फ एक इंजेक्सन और यदि आवश्यकता हो तो एक सप्ताह के उपरान्त दोहराया जा सकता है। इसके अतिरिक्त होम्योपैथिक सल्फर 6 × को 10–15 दिन तक खिलाने से भी लाभ मिलता है।

10. डैमोडैक्टिक (फॉलीकुसर) मेंजः यह डेमोडेक्स प्रजाति के परजीवी द्वारा होती है जो कि गहराई में पाये जाने वाले माइट्स है। इस रोग का उपचार कठिन है। इसके लक्षण उभरे हुए अधिकतर सिर तथा मुंह पर शुरू होते है परन्तु शीघ्र ही पूरे शरीर पर भी फैल सकते हैं। समय पर उपचार न करने पर जीवाणु संक्रमण के कारण दानेदार घाव भी बनते हैं। इन्हें दबाने से इनमें से मवाद निकलता है, जिसमें माइट्स (वास्तविक रोग कारक) भी होते है। खुजली अत्यधिक नहीं होती। यह कम उम्र के कुत्तों तथा बछड़ों में अधिक पाया जाता है। उपचार हेतु सर्वप्रथम प्रभावित पशु को अलग कर दें। घाव को स्प्रिट से साफकर सुमिथियौन या मैलाथियौन का 2 प्रतिशत घोल लगायें। इसे रोगी की आँखों तथा मुंह में जाने से बचायें या अमित्राज 19.9 प्रतिशत का 1.025 मिली0 एक लीटर गर्म पानी में मिलाकर हफ्ते में दो बार किसी कपड़े से लगायें। शीघ्र लाभ हेतु साथ में आइवरमेक्टिन का इंजेक्सन सप्ताह में एक बार तीन सप्ताह तक लगाना चाहिए। 1 प्रतिशत एसनटाल तथा नोगुवान का हफ्ते में एक बार इंजेक्सन अत्यधिक प्रभावशील पाया गया है।

विटामिन तथा खनिज युक्त पौष्टिक आहार के साथ लिवामिसौल का 1 मिली0 प्रति 10 कि.ग्रा. शरीर भार के अनुसार छोटे पशुओं और 1 मि. ली. प्रति 30 कि.ग्रा. शरीर भार के अनुसार बड़े पशुओं में अन्तःपेशीय

इंजेक्सन हफ्ते में दो बार लगाने से त्वचा सम्बन्धी रोगों से लड़ने की क्षमता बढ़ती है।

11. प्रकाश प्रभाविकता (Photosensitization): प्रकाश प्रभाविकता सामान्यतः गाय में होती है तथा इसके लक्षण त्वचा के रंगहीन भाग जिन पर सीधी धूप पड़ती हो, पर अधिक दिखाई देते हैं। कुछ विषैले पौधे जैसे लैन्टाना कामरा या फीनोथायोजीन नामक दवा आदि से भी यह रोग होता हैं। इस रोग में शरीर में फाइलोइरिथ्रिन की मात्रा बढ़ जाती है जिससे त्वचा में खुजली होती है तथा पानी भर जाता है व बाल झड़ने लगते है। उपचार हेतु पशुओं को धूप से बचायें तथा जीवाणु संक्रमण के निरोध के लिए प्रतिजैविक (Antibiotic) का इंजेक्सन दें। यकृत विषाक्तता को निष्क्रिय करने के लिए ऊँची खुराक में विटामिन–ए तथा यकृत टॉनिक दें। कब्ज होने की स्थिति में दस्त कराने वाली दवा (परगेटिव) दें तथा पशु को आराम भी देना चाहिए।

मक्खी द्वारा त्वचा रोग लम्बे बालों वाले सभी पशुओं में होता है। मक्खियों के कारण खुजली होती रहती है तथा उत्पन्न घाव में जीवाणु संक्रमण भी हो सकता है। इससे त्वचा खुरदरी तथा लाल हो जाती है। पशु बेचैन हो जाता है तथा उसकी उत्पादन क्षमता घट जाती है। उपचार हेतु नियमित रूप से झाड़–पोंछ तथा सफाई करनी चाहिए तथा शैम्पू जैसे कैनिफर, नोटिक्स या ब्लेज आदि से हफ्ते में एक बार नहलाना चाहिए। इससे मक्खी तथा जूँ दूर रहती है। दवा लगाते समय मुंह तथा आँखों को सुरक्षित रखें। मक्खी, पिस्सू तथा जूँ को दूर रखने वाले बैल्ट तथा कॉलर भी उपयोगी है परन्तु भारी संक्रमण की स्थिति में इनका प्रभाव सीमित है।

❑❑❑

13 जनन तन्त्र के रोग

पशु चाहे भार वाहन, दूध, ऊन अथवा मांस हेतु पाला जाय, यदि वह उपयुक्त समय पर बच्चा न उत्पन्न करे तो पशु पालन का उद्धेश्य पूर्ण नहीं होता है। वयस्क संकर बछिया 18 माह में, देशी 24 माह में एवं भैंस ओसर को 30 माह में गाभिन हो जाना चाहिए। प्रत्येक पशु में गाभिन होने की अवस्था है तथा उसे ब्याने के बाद एक निश्चित अवधि में पशु को पुनः गाभिन हो जाना चाहिए। यदि ऐसा नहीं हो रहा है तो पशु को कोई रोग है। ऐसे अन्य कई जनन तन्त्र के रोग हैं जिनका संक्षेप में उल्लेख हितकर होगा।

1. मद में न आना (एनइस्ट्रस): जब पशु उचित समय पर गर्मी में न आये तो इसे मद में न आना या एनइस्ट्रस कहते हैं। इसके कई कारण हो सकते हैं, किन्तु प्रमुख कारण हैं–पोषण की कमी, इसके अतिरिक्त इस्ट्रोजन नामक हारमोन का न बनना, अंतः कृमियों का प्रकोप, आदि। रोग का निदान या पहचान तो सहज है किन्तु उपचार हेतु सर्वप्रथम पशु को अंतःकृमि नाशक दवा जैसे एलबेण्डाजोल या लिबेमिशाल की उचित मात्रा देकर, 50 ग्राम प्रति दिन की दर से खनिज मिश्रण देना चाहिए। पशु में हार्मोन बनने की प्रक्रिया को ठीक करने हेतु अंकुरित अनाज जैसे जौ, चना एवं गेहूँ आदि भी आधा पाव (125 ग्राम) रोज खिलाना चाहिए। इस प्रकार गर्मी में लाने हेतु 20–40 दिन उपचार करना पड़ता है। प्रथम मदकाल को छोड़कर अगले मदकाल में मद के लक्षण जब कम होने लगे तो पशु को गाभिन कराना चाहिए।

मद के लक्षण

1. पशु बार–बार पेशाब करता है।
2. पेशाब के रास्ते पारदर्शी मल गिराता है।
3. आसपास के अन्य पशु पर चढ़ता है।
4. चारा कम खाता है।
5. शरीर का तापमान लगभग 1 डिग्री सेन्टीग्रेड बढ़ जाता है।

6. रम्भाता या बोलता है।
7. बेचैन रहता है।
8. योनि में हल्की सूजन आ जाती है।
9. योनि के आसपास हाथ रखने पर पशु आराम महसूस करता है।
10. दुधारू पशु में दुग्ध उत्पादन घट जाता है।

2. गाभिन न होना (रिपीट ब्रीडिंग): कई बार पशु गर्मी में तो आता है किन्तु गाभिन कराने पर भी रूकता नहीं है। ऐसा अनेक कारणों से होता है, जैसेः पोषण की कमी, हार्मोन की कमी, संक्रमण जैसे ब्रूसेल्ला इत्यादि, बच्चेदानी में मवाद, ओवरी पर कार्पस ल्यूटियम नामक उभार, अण्डा उपलब्ध न होना, सही समय पर सही वीर्य से गाभिन न करा सकना एवं वीर्य का संक्रमण इत्यादि। प्रायः रोग की सही पहचान कठिन होती है और एक योग्य पशु चिकित्सक ही ठीक–ठीक कारण की पहचान कर उचित चिकित्सा द्वारा पशु को उपचारित कर सकता है। परन्तु पशुपालक संतुलित आहार, जो खनिज मिश्रण युक्त हो तथा पशु की स्वच्छता का ध्यान रखकर, अनेक कारणों को हटा सकता है जिससे पशु समय पर गाभिन हो सके और उत्पादकता बनी रहे। पशु को यदि साड़ द्वारा गाभिन कराया जा रहा है तो यह ध्यान रखना आवश्यक है कि साड़ की उम्र व स्वास्थ्य अच्छा हो। साड़ द्वारा एक दिन में 2 से ज्यादा पशु गाभिन न किये जा रहे हो। गाभिन करते समय शान्ति हो और पशु को गाभिन करने के पूर्व व बाद आधा घण्टे का आराम दिया गया हो। कृत्रिम गर्भादान में वीर्य अच्छा हो वह ठीक प्रकार से भण्डारित हो। उसे ठीक प्रकार सामान्य तापमान पर लाया गया हो तथा वीर्य जनन मार्ग में सर्विक्स भाग के मध्य में डाला गया हो। इस प्रकार प्रबन्धन द्वारा अच्छे परिणाम प्राप्त हो सकेंगे।

3. गर्भाशय का संक्रमणः गर्भाशय में संक्रमण जनन तंत्र का प्रमुख रोग है। इसके लिए गर्भाशय का गुदा द्वारा परीक्षण करें तथा उसमें पाये जाने वाले मवाद की जाँच करें। यदि मवाद है तो गर्भाशय की 3–5 दिन तक ल्यूगाल्स आयोडीन या पोटेशियम परमैंगनेट के घोल से सफाई करना चाहिए तथा गर्भाशय में व इन्जेक्सन दोनों द्वारा प्रतिजैविक व सहायक औषधि देनी चाहिए।

4. नाल या जेर रूकना (रिटेंशन ऑफ प्लेसेन्टा): सामान्यतः जेर प्रसव के 6–8 घंटे उपरान्त गिर जाता है। प्रसव के उपरान्त आसानी से जेर गिर जाये इसके लिए मैगसल्फ–250 ग्राम, एक्सस अरगर तरल 10 मिली0, टिंचर जिंजीबेरिस 60 मिली0 तथा पानी 500 मिली0 मिलाकर पशु को पिलाना चाहिए। बाजार में उपलब्ध यूटेरोटोन, हार्मोटोन, रिप्लेन्टा का घोल या एक्जापार को 100 से 200 मिली0 प्रतिदिन 2 से 5 दिन के लिए पिलाने

से भी लाभ मिलता है। यदि उपरोक्त उपचार के पश्चात् ब्याने के तीस घण्टे तक भी नाल न गिरे तो उसे हाथ से निकाल दें। इसके लिए हाथों पर टेगेरॉन क्रीम या सैवलॉन लगायें तथा जितना सम्भव हो, पूर्णतः नाल को हल्के हाथ से बाहर निकाल दें। नाल निकालने के उपरान्त फ्यूरिया या फ्यूजोन या न्यूफ्रोजोन की दो गोली प्रतिदिन गर्भाशय में डालनी चाहिए। ये कुछ अन्तः गर्भाशय दवायें हैं जिनमें नाइट्रोफ्यूराजोन तथा यूरिया हैं जो आर्गेनिक पदार्थों के गलाने तथा उसे शरीर से बाहर गिराने में सहायक हैं। यह उपचार संक्रमण निरोध के लिए भी महत्वपूर्ण है, क्योंकि यदि जेर या नाल 40 घंटे तक न गिरे तो पशु में बुखार, गर्भाशय में दर्द तथा विषाक्तता जैसे लक्षण दिखने लगते हैं। गर्भाशय में यदि संक्रमण हो गया हो तो ऑक्सीटेट्रासाइक्लिन अन्तः गर्भाशय तथा इन्जेक्सन दोनों से देना चाहिए। 30 मिली0 टेरामाइसिन तरल या मेट्रोजिल भी गर्भाशय में डालने हेतु उपयोग कर सकते हैं।

5. योनि तथा गर्भाशय का बाहर निकलना (प्रोलैप्स): सामान्यतः योनि का निकलना रूकी हुई नाल, शरीर में पोषण की कमी, तीक्ष्ण संताप तथा संक्रामक गर्भपात जैसे रोगों के कारण होता है। कभी–कभी घास तथा साइलेज में उपस्थित इस्ट्रोजन के कारण भी नाल या जेर नहीं गिरती है और गर्भाशय शरीर से बाहर निकलती है। कुछ स्थितियों में कारण स्पष्ट नहीं है। इसके प्रबन्ध के लिए पशु को साफ जमीन पर, पीछे के पैर ऊंचे स्तर पर करके खड़ा करें। बाहर की ओर निकले हुए अंग को एक मुलायम साफ कपड़े से पोछें। उसे 1 प्रतिशत सैवलॉन या 0.1 प्रतिशत पोटेशियम परमैंगनेट युक्त ठंडे पानी से घोयें। यदि रक्तस्राव हो रहा है तो नियंत्रण के लिए एड्रीनलीन लगायें अथवा स्थानीय सुन्न करने की दवा (एनेस्थैटिक) जैसे जायलोकेन इस्तेमाल करें। बाहर निकले हुए अंग को धीरे–धीरे अन्दर डालें। यदि निकले हुए अंग को साफ कपड़े से ढक कर दबायें तो उसका आकार छोटा हो जाता है तथा उसे आसानी से वापस रखा जा सकता है। उसे पूरे हाथ अथवा हथेली से दबायें, उंगुलियों से दबाने के कारण चोट लग सकती है। अंग को ठीक प्रकार शरीर के अंदर करके टांका लगा सकते हैं। बार–बार होने वाली स्थिति के उपचार के लिए क्लोरल हाईड्रास 50–60 ग्राम, पानी 200 मिली0 तथा लिनि तेल 500 मिली0 मिलाकर प्रयोग करने से लाभ होता है। लार्जेक्टिल 5 प्रतिशत घोल, 10 मिली0 ई0 या सिक्विल 3–5 मिली0 अन्तःपेशीय विधि से देना भी हितकर है। होम्योपैथिक पल्सटिला, पोडोफाइलम तथा सीपिया 200 शक्ति की दस बूंदें हर एक घंटे के अन्तर पर पिलाने से भी लाभ होता है।

❑❑❑

14 उत्पादन सम्बन्धी रोग

यह अधिक उत्पादन वाली डेरी गाय तथा भैसों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। ये रोग प्रसव के कुछ दिन से कुछ सप्ताह उपरान्त होते हैं। गर्भावस्था के दौरान पौष्टिक आहार की कमी, अधिक दुग्ध उत्पादन का दबाव एवं हार्मोन्स की अस्थिरता आदि उत्पादन सम्बन्धी रोग के कुछ कारण हैं। अधिक उत्पादन क्षमता के पशुपालन का बढ़ना इस तरह के रोगों की सम्भावना को बढ़ा रहा है।

1. दुग्ध ज्वर (पारचूरिएंट पैरेसिस): यह अक्सर प्रसव के एक सप्ताह के भीतर होता है किन्तु इसकी पहले दो दिन में होने की सम्भावना अधिक होती है। इसमें रक्त कैल्शियम तथा अन्य खनिज की कमी के कारण दुग्ध उत्पादन अकस्मात गिर जाता है। रोगी पशु में कंपन, दुर्बल पेशियाँ, खड़े होने की अयोग्यता, साधारण से कम तापमान, पुतली फैली हुई जैसे लक्षण आते हैं। हृदय गति तेज परंतु दुर्बल होती है। नवीन प्रसव तथा खीस के अधिक उत्पादन के इतिहास के कारण निदान आसान है। उपचार हेतु निम्न में से कोई एक कैल्शियमयुक्त दवा देनी चाहिए। इन्जेक्सन कैल्बोरल या कैल्शियम मैग्नीशियम बोराग्लूकोनेट 20 प्रतिशत का 450 से 900 मिली0 घोल धीरे–धीरे अन्तःशिरा विधि से अथवा कैल–बी–वेट, कैलमैक्स, थाइयाकॉल या कैलबोमैक्स भी दे सकते हैं।

बोतल को शरीर के तापमान जितना गर्म कर लेना चाहिए तथा इंजेक्सन के दौरान हृदय ध्वनि सावधानीपूर्वक सुनें। यदि हृदय गति असामान्य हो रही हो तो तुरन्त कैल्शियम का चढ़ाना रोककर एड्रिंनीलीन तथा डिजिटॉक्सिन का क्रमशः 10–10 मिली इन्जेक्सन लगाना चाहिए। उपचार के दौरान 5 प्रतिशत डेक्सट्रोज 2–4 लीटर तथा फॉस्फोरस 10–20 मिली0 की भी आवश्यकता पड़ सकती है। इस उपचार से तुरन्त आराम मिलता है तथा सुधार से निदान की पुष्टि हो जाती है। सहायक उपचार हेतु आहार में खनिज मिश्रण 50 से 100 ग्राम प्रतिदिन देना चाहिए और मल्टी विटामिन के इंजेक्सन भी प्रतिदिन लगाना चाहिए। अनेक बार पशुओं के रक्त में कैल्शियम का स्तर कम तो होता है परन्तु इतना कम नहीं है कि वह दुग्ध ज्वर के लक्षण उत्पन्न कर सके। सीरम में साधारणतः कैल्शियम का स्तर 8–12 मि.ग्रा. प्रति 100 मिली0 होता है। जब यह 5 मि.ग्रा. प्रति 100

मिली0 से भी कम हो जाता है तो पशु की मासपेशियों में कंपन, खड़े रहने में कठिनाई तथा कम तापमान जैसे लक्षण दिखाई देते हैं। प्रायः यह दुर्बल हार्मोन प्रतिवेदन के कारण कैल्शियम डिपो से कैल्शियम की उपलब्धता न होने का कारण होता है। अंतः परजीवी, आहार की अत्यधिक क्षारता एवं एस्परजिलस नामक फफूंद से संक्रमित आहार (जिसमें भी उत्पादन कम करने के कारण है) आदि के कारण उत्पादन क्षमता घटी रहती है। अतः उपरोक्त परिस्थितियों को भी ध्यान में रखना चाहिए।

2. कीटोसिस (एसीटोनीमिया या हाईपोग्लाईसीमिया): प्राथमिक कीटोसिस प्रसव के 6 से 8 सप्ताह बाद की उत्तम दुग्ध उत्पादन की अवधि में होता है। यह कार्बोहाइट्रेड चयापचय ठीक प्रकार से न होने के कारण होता है। इस रोग में रक्त में ग्लूकोज का स्तर घट जाता है और ग्लूकोज दुग्ध में उत्पादन गति से काफी तेज जाता है। भेड़ों में यह स्थिति गर्भावस्था के अन्तिम दिनों में होती है तथा इसे गर्भकाल विषाक्तता (प्रेगनेन्सी टॉक्सीमिया) कहते हैं। कभी–कभी यह हाइपोकैल्सीमिया के साथ भी होती है। दुग्ध उत्पादन अकस्मात गिर जाता है। तन्त्रिका तन्त्र के उत्तेजना के लक्षण आते हैं।

पशु का तापमान, नाड़ी तथा श्वसन गति सामान्य रहते हैं। अधोत्वचीय चर्बी का ह्रास होने लगता है। श्वास तथा मूत्र में मीठी गंध आती है। पशु भूसा खाता है परन्तु दाना मिश्रण नहीं खाता। इसकी पुष्टि मूत्र अथवा रक्त में ग्लूकोज स्तर की जाँच से हो सकती है। उपचार हेतु 25–50 प्रतिशत डेक्सट्रोज का घोल या रिन्टोज को अंतःशिरा विधि से एक लीटर तक देना चाहिए। ग्लूकोज उपचार के साथ कोई भी कार्टिकोस्टिरॉइड दें। सहायक उपचार के लिए बी कॉम्पलैक्स के साथ लिवर एक्सट्रेक्ट वाला कोई भी इंजेक्सन 5–10 मिली0, एक दिन छोड़कर लगाना चाहिए।

3. हाइपोमैग्नीसीमिया: यह प्रायः ठण्ड के दिनों में होने वाला रोग है। गाय में यह अत्यधिक खाद वाली मिट्टी में उगे चारागाह में अधिक चरने के कारण होती है। पशुओं में किसी भी उम्र में हो सकता है। इसमें अत्यधिक उत्तेजना, पेशियों में कंपन तथा हृदय गति बढ़ जाने (100–120 प्रति मिनट) जैसे लक्षण होते हैं। त्वचा कड़ी हो जाती है एवं पशु कई–कई घण्टे तक बैठता नहीं है। इस रोग के निदान हेतु सीरम में मैग्नीशियम के स्तर जान करके अथवा अन्य बिमारियों, जिसके कारण केन्द्रीय तन्त्रिका तन्त्र के लक्षण होते हैं, को निष्कासित करके करते है। बछड़ों में इसे मिल्क टिटैनी कहते हैं। यह उन बछड़ों

में होता है जिन्हें सिर्फ कम मैग्नीशियम स्तर वाली गाय का दूध पिलाया जाता है। बछड़े के रोने तथा चिल्लाने के उपरान्त अचानक मृत्यु हो सकती है। मरने से पूर्व बछड़ा लेट जाता है, मांसपेशियों में कंपन होती है और वह छटपटाता भी है।

उपचार हेतु माईफैक्स, कैलमैग, मिफिकाल या कैबकोडैक्स का 200–300 मिली0 वयस्क के लिए एवं 50–100 मिली0 युवा के लिए धीरे–धीरे अन्तः शिरीय विधि से इन्जेक्सन देते हैं। इसके अतिरिक्त मैग्नीशियम सल्फेट का 50 प्रतिशत घोल का 100–200 मिली0 अधोत्वचीय विधि से इंजेक्सन वयस्क पशु के लिए भी प्रयोग कर सकते हैं। उपरोक्त उपचार पशु के पूर्णतयः ठीक होने तक प्रतिदिन करना चाहिए।

4. एजोटूरिया (पैरालिटिक मायोग्लोबीन्यूरिया या घोड़ों की मंडे मार्निंग सिकनैस): यह घोड़ों में आराम के अवधि के उपरान्त शुरू किये गये अभ्यास के दौरान होती है। जिन घोड़ों को अधिक प्रोटीन युक्त आहार दिया जाता है, उनमें यह रोग अधिक होता है। कभी–कभी यह रोग गाय में भी होता है। इस रोग के लक्षण, पेशियों में अचानक अकड़ आ जाना, चलने की अयोग्यता, अत्यधिक पसीना, दर्दयुक्त पेशियाँ तथा तेज श्वसन गति आदि हैं। उपचार हेतु सर्वप्रथम पशु से काम लेना रोक दें तथा सम्पूर्ण आराम दें। पशु को 30 ग्राम क्लोरल हाइड्रेट व इतना ही तेल पिलायें या लारजैक्टिल का 5 प्रतिशत घोल 4–6 मिली0 अन्तःशिरीय विधि से देना चाहिए। थाइमीन हाइड्रोक्लोराइड 500 मि.ली. अन्तःशिरीय या अन्तःपेशीय विधि से प्रयोग कर सकते हैं।

5. डाउनर काउ सिन्ड्रोमः इस रोग में गाय की उठने में अयोग्यता ही प्रमुख लक्षण है। यह अधिकतर प्रसव के उपरान्त होता है, परन्तु कभी–कभी गर्भवती पशुओं में भी हो जाता है। चयापचय रोग, पेशीय तंत्र की व्यथा, संक्रमण या विषाक्तता इसके कारक हैं। विटामिन ई तथा सिलेनियम की कमी के कारण भी इस रोग के होने की सम्भावना होती है। इस रोग में पशु काफी चौकन्ना दिखता है। भूख सामान्य होती है, परन्तु उठने की कोशिश असफल होती है। यदि पशु को बलपूर्वक खड़ा किया जाए तो वह अपने पैरों पर भार सहन नहीं कर पाता। कूल्हे तथा जाँघ की पेशियाँ निष्क्रिय हो जाती हैं।

उपचार हेतु पहले पूर्ण परीक्षण द्वारा अस्थिभंग तथा पेशियों में खिंचाव की सम्भावना, गुदा परीक्षण द्वारा मेट्राईटिस तथा उन्नत गर्भावस्था में बच्चा फंस जाने आदि की सम्भावना का निष्कासन करें।

तत्पश्चात् यदि यह चयापचय व्यथा के कारण है तो पशु के उपचार हेतु इन्जेक्सन टोनोफॉस्फेन या कोबाफॉस को 20 मिली0 अंतःशिरीय तथा माईफैक्स या मिफिकास 200 मिली0 धीमी गति द्वारा, अंतःशिरीय विधि से, प्रतिदिन एक बार, 3–4 दिन के लिए देना चाहिए। साथ में इन्जेक्सन बेरिन, विबेजैक्स या न्यूरोबियोन को 10 मिली0 3–4 दिन के लिए अंतःपेशीय विधि से देना चाहिए। पोटेशियम एसीटेट का 10 प्रतिशत घोल 100 मि.ली. अंतःपेशीय विधि से प्रतिदिन 8 दिन के लिए दे सकते हैं। इसके साथ पशु को कपूर के मलहम की मालिश एवं इंफ्रा रेड सिकाई भी कर सकते हैं।

6. फॉस्फोरस अल्पता (हाईपोफॉस्फेटीमिया, पोस्ट पारचूरिएंट हीमोग्लोबीनूरिया): यह रोग सामान्यतः उन क्षेत्रों में पाया जाता है, जहाँ की मिट्टी में फॉस्फोरस की मात्रा कम हो। यह भैसों में अधिक पाया जाता है। यह रोग हरियाणा, पंजाब तथा महाराष्ट्र के मराठवाड़ा क्षेत्रों में प्रचलित है। इस रोग में पशुओं को बुखार नहीं होता है। परन्तु हीमोग्लाबीनूरिया एक महत्वपूर्ण लक्षण है, इसके अतिरिक्त श्वसन में समस्या, पीलिया तथा हृदय गति मंद हो जाती है। इस रोग का निदान इतिहास एवं लक्षण के अतिरिक्त सीरम फॉस्फोरस स्तर जो कि 2 मि.ली. से गिरकर 0.5 मि.ली. तक हो जाते हैं, के द्वारा कर सकते हैं। जहाँ पर यह रोग प्रचलित है वहाँ निदान कठिन नहीं है।

विशिष्ट उपचार के लिए 60 ग्राम सोडियम एसिड फॉस्फेट को 300 मि.ली. पानी में घोलकर धीमी गति से अंतःशिरीय विधि से देना चाहिए। यदि आवश्यक हो तो इसके उपरान्त 12 घण्टे के अन्तर पर अधोत्वचीय विधि से इतनी ही मात्रा दे सकते हैं। 100 ग्राम बोन मील दिन में दो बार चारे में खिलायें तथा इन्जेक्सन कोबाफॉस या टोनो फॉसफेन 10 मि.ली. प्रतिदिन, 2–3 दिन तक देना चाहिए।

❑❑❑

15 जीवाणु जनित रोग

जीवाणु जनित रोग संक्रामक होते हैं। संक्रामक रोग के उपचार के लिए सर्वप्रथम रोगग्रस्त पशु को अलग कर लें। लक्षणों के अनुसार शीघ्र उपचार प्रारम्भ कर दें। उचित पदार्थ को प्रयोगशाला में पुष्टिकरण के लिए भेंजे और पुष्टि के अनुसार विशेष उपचार करना चाहिए। मृत पशुओं के शरीर, उनके आसपास की बिछावन एवं उनका चारा आदि को उचित प्रकार से निस्तारित करें। शेष पशुओं को टीका लगायें एवं पशुशाला की स्वच्छता पर विशेष ध्यान देना चाहिए।

जीवाणु जनित रोगः

1. काष्ट जिह्वा (एक्टीनोवेसीलोसिस): यह एक्टीनोबेसीलस लिग्नेरेसी द्वारा होने वाला गाय–भैसों का रोग है। इसमें संक्रमण के कारण लिम्फ ग्रन्थि तथा जिह्वा के मुलायम कोशिका समूहों का तीव्र शोथ होता है। इसके पश्चात् लिम्फ ग्रन्थियों में सूजन आदि उत्पन्न हो जाती है। घाव बन जाता है तथा मवाद भी देखा जाता है। रोग की पुष्टिकरण के लिए मवाद का नमूना भेजना चाहिए। उपचार हेतु पोटेशियम आयोडाइड 20 ग्राम प्रतिदिन 30 दिन तक देना चाहिए। उच्च खुराक में स्ट्रेप्टोपेनिसिलिन प्रतिदिन 6–8 दिन के लिए अत्यधिक प्रभावशील है। टेट्रासाइक्लिन भी दे सकते हैं। इस रोग की कोई वैक्सीन उपलब्ध नहीं है।

2. जबड़े की सूजन (एक्टीनोमाईकोसिस): यह *एक्टीनोमाइसीज बोविस* द्वारा होने वाला रोग है जो प्रायः जबड़े की हड्डी को प्रभावित करता है। इस रोग में जबड़े में कठोर सूजन हो जाती है तथा कभी–कभी सूजन से मवाद भी बहने लगता है। इसका उपचार काष्ट जीह्वा (एक्टीनोबेसीलोसिस) की तरह ही करते हैं।

3. तिल्ली रोग (एन्थ्रैक्स) : यह *बेसीलस एन्थ्रैसिस* नामक जीवाणु से होने वाला रोग है जो कि सामान्यतया गाय में पाया जा सकता है। यह मनुष्यों में भी फैल सकता है। इसमें अत्यधिक ज्वर के साथ मुख, नाक व गुदा से रक्तस्राव होता है और अकस्मात पशु की मृत्यु हो जाती है। रक्त काले रंग का हो जाता है और रक्त का थक्का नहीं बनता है। तिल्ली (स्प्लीन) काली तथा 8–10 गुना बड़ी हो जाती है। भली प्रकार से पैक किया गया रक्त अथवा कान का टुकड़ा प्रयोगशाला में पुष्टिकरण के लिए भेजना चाहिए। उपचार हेतु क्रिस्टेलाइन पेनीसिलिन, 40–80 लाख अन्तर्राष्ट्रीय मानक अंतः शिरीय तथा प्रोकेन पेनीसिलिन, 40 लाख अन्तर्राष्ट्रीय मानक अंतःपेशीय

विधि से प्रतिदिन देना चाहिए। हाईपरइम्यून एंटी एन्थ्रैक्स सीरम 100–200 मिली0 अन्तःशिरीय विधि से देना चाहिए। क्रिस्टेलाइन पेनीसिलिन को 6 घंटे के अन्तर पर दोहरायें। टैरामाइसिन या ऑक्सीस्टैक्लिन उच्च खुराक में अन्तःशिरीय विधि से इस्तेमाल कर सकते है। रोग से बचाव हेतु एन्थ्रैक्स स्पोर टीका वैक्सीन–1 मिली0 अधोत्वचीय प्रत्येक वर्ष मार्च–अप्रैल माह में लगाना चाहिए।

4. लंगड़ी रोग (ब्लैक क्वाटर, बी.क्यू.): यह *क्लॉसट्रीडियम शोवियाई* के संक्रमण के कारण होता है। यह 2 वर्ष से कम उम्र के युवा गाय–भैसों में अधिक होता है तथा इससे भेड़ तथा बकरी भी प्रभावित होते हैं। इस रोग की आकस्मिक उत्पत्ति होती है, पशु में लंगड़ापन, जांघों की पेशियों में शोथ तथा सूजन आ जाती है। सूजन के स्पर्शगोचन पर कड़कड़ाने की ध्वनि होती है तथा तीक्ष्ण विषाक्तता के कारण तीव्र ज्वर तथा शरीर में कंपन्न होता है। इस रोग की पुष्टि हेतु कड़कड़ाने वाली सूजन से निकले हुए तरल या प्रभावित पेशी का एक टुकड़ा 10 प्रतिशत फॉर्मेलिन में डुबोकर प्रयोगशाला में भेंजे, जिसका परीक्षण कर जीवाणु को पहचाना जा सकता है। उपचार हेतु प्रति जैविक जैसा कि एन्थ्रैक्स के लिए निर्धारित है, उसी प्रकार प्रयोग करें। सूजन पर चीरा लगायें तथा तरल निकाल दें। बड़ी खुराक में बी.क्यू. एण्टीसीरम यदि उपलब्ध हो तो देना चाहिए। रोग से बचाव हेतु एलम प्रेसीपिटेटिड टीका (वैक्सीन) 5 मिली0 अधोत्वचीय विधि से मानसून से पहले देना चाहिए।

5. बौटुलिज्मः इस रोग में गाय, भेड़ तथा पक्षियों में लकवा हो जाता है। इसका कारण *क्लॉस्ट्रीडियम बोटुलिनम* नामक जीवाणु का विष है। यह सड़े हुए पशु पदार्थो में पनपता है। प्रोटीन तथाा फॉस्फोरस की कमी के कारण पशु न खाने योग्य तत्व ग्रहण करता है और सड़े पशु पदार्थो को खाने से पशु इस रोग से प्रभावित हो जाता है। इस रोग से प्रभावित पशु की पेशियां निरन्तर दुर्बल होती जाती है तथा पीछे की टांगों का लकवा हो जाता है। पशु लेट जाता है तथा मर जाता है। इतिहास एवं लक्षण के अतिरिक्त सेवन किये गये पदार्थ में विशिष्ट विष का पाया जाना ही इसको पहचानने की विधि है। उपचार हेतु पॉलीवेलैंट ऐण्टीटॉक्सिक सीरम ही लाभदायक है। पाचन तंत्र से विष को निकलने के लिए दस्त कराने वाले पदार्थ (पर्गेटिव) जैसे 2–3 लीटर खाने योग्य तेल दें जिससे पशु को दस्त लग जाये और विष शरीर से बाहर निकल जायें।

6. संक्रामक गर्भपात (ब्रूसेल्लोसिस): *ब्रूसेल्ला अबॉर्टस* तथा अन्य ब्रुसेल्ला द्वारा गाय भैसों में गर्भपात होता है जो स्पर्श द्वारा एक से दूसरे पशु में फैलता है। यह दुग्ध तथा गर्भाशय के श्रावों द्वारा मनुष्य में भी फैल सकता है।

गर्भपात सिर्फ एक बार गर्भावस्था के 6–9 महीने में होता है। गर्भपात में नाड़ या जेर का रूकना सामान्य है। समूह में सभी अथवा ज्यादातर पशुओं में गर्भपात की जानकारी तथा प्रजनन सम्बन्धी समस्यायें ही इस रोग के पहचान में सहायक हैं। रोग के पुष्टिकरण के लिए जेर तथा नवजात बच्चे के पेट के पदार्थ सूखी बर्फ में भेजें, जिससे कारक जीवाणु पहचाना जा सके। सीरम की रंगीन एंटीजन के साथ रैपिड ब्रुसेल्ला परीक्षण प्लेट भी निदान में सहायक है। इसके अतिरिक्त मिल्क रिंग टेस्ट भी कर सकते हैं। इसके लिए एक विशिष्ट रंगीन एंटीजन इस्तेमाल होता है। उपचार हेतु स्ट्रेप्टोमाइसिन तथा क्लोरमफेनीकॉल नामक प्रति जैविक औषधि प्रभावशील है परन्तु ऊंची खुराक के साथ लम्बा उपचार आवश्यक है। शरीर से संक्रमण का पूर्ण रूप से निकलना सम्भव नहीं है। अतः प्रभावित पशुओं को अलग कर दें तथा उनके बछड़ों को अलग से पालें। रोग से बचाव हेतु मादा बछड़े का टीकाकरण कॉटन–19 स्ट्रेन टीका (वैक्सीन) द्वारा 4–8 महीने की उम्र में करें। इसे 5 मिली0 अधोत्वचीय विधि से लगाते हैं और यह पूरे जीवनकाल तक सुरक्षा प्रदान करती है।

7. गाय का माइकोप्लाज्मा जनित न्यूमोनिया जैसा रोग (कन्टेजियस बोवाइन प्ल्यूरोनिमोनिया–सी.बी.पी.पी.): यह *माइकोप्लाजमा माईकोइडिस* द्वारा गाय–भैसों में होने वाला एक विशिष्ट संक्रामण रोग है। यह फेफड़ों तथा उसकी झिल्ली प्लूरा को प्रभावित करता है। इससे प्लूरिसी के साथ निमोनिया के स्पष्ट लक्षण आते हैं। इसका निदान फेफड़ों की ध्वनियों द्वारा होता है तथा पुष्टिकरण सीरम में कॉम्प्लीमेन्ट फिक्सेशन टेस्ट के द्वारा होता है। पशु की मृत्यु के उपरान्त फेफड़े संगमरमर के मुजैक की तरह दिखते हैं तथा फेफड़े के खण्डों की भित्ती मोटी हो जाती है। ये लक्षण निदान में सहायक होते हैं। इस रोग के उपचार हेतु टाइलोसिन टारटरेट, 5–10 मि. ली. प्रति कि.ग्रा. शरीर भार की दर से अंतःपेशीय विधि द्वारा हर 6 घंटे के अन्तर पर लगाते हैं। इसके अतिरिक्त ऊंची खुराक में टैरामाइसिन, ऑक्सीटेट्रासाइक्लिन या क्लोरमफेनीकॉल भी दे सकते हैं। इस रोग से बचाव हेतु कोई टीका बाजार में उपलब्ध नहीं है।

8. बकरी का माइकोप्लाज्मा जनित न्यूमोनिया जैसा रोग (काप्रेजियस केप्राइन प्ल्यूरोनिमोनिया–सी.सी.पी.पी.): यह बकरी का विशिष्ट रोग है। इसके लक्षण तथा उपचार सी.बी.पी.पी. की तरह है। असंख्य बकरियाँ इसके कारण हर वर्ष मरती हैं। इस रोग में बकरी को तेज, बुखार, श्वसन व्यथा, नाक से श्राव व निमोनिया हो जाता है। उपचार हेतु टाइलोसिन टारटरेट, क्लोरमफेनीकॉल, टेट्रासाइक्लिन आदि अन्तःशिरीय विधि से प्रयोग करते हैं। रोग से बचाव हेतु जीवित वैक्सीन आई.वी.आर.आई., बरेली

(उ0प्र0) में उपलब्ध है तथा इसके अच्छे फल हैं जो 0.2 मिली0 कान की नोक पर अंतःत्वचा विधि से लगाते हैं।

9. एन्टेरोटॉक्सेमिया (पल्पी किडनी): यह क्लॉस्ट्रीडियम परफ्रिंजेंस द्वारा होने वाली रोमथीं पशुओं के बच्चों की विशेषकर भेड़ों की तीव्र विषाक्तता है। यह जीव आँतों में चिपक जाते हैं तथा विष बनाते हैं। तीन से दस माह की उम्र के मेमने अधिक प्रभावित होते हैं। यह रोग वयस्क बकरी तथा बछड़ों में भी हो सकता है। मेमनों में यह 2–12 घंटों में मृत्यु कर देता है। वयस्क भेड़ लड़खड़ाती है, साँस नहीं ले पाती, उसे अफरा, आक्षेप, पेशियों में कंपन तथा दस्त हो जाते हैं। पुष्टिकरण हेतु ऑतों से पदार्थ इक्कठा करके उसमें कुछ बूंदें क्लोराफार्म की डालें तथा बर्फ में रखकर भेजें जिससे विष एवं जीवाणु की पहचान हो सके। रोग से बचाव हेतु 2.5 मि.ली. अधोत्वचीय विधि से आई.वी.आर.आई या आई.बी.पी. पूने की मल्टीकम्पोनेन्ट क्लॉस्ट्रीडियम टीका (वैक्सीन) दें। बूस्टर खुराक 21 दिन पश्चात् लगाना चाहिए।

10. ग्लैन्डर्स: घोड़ों का संक्रमण रोग है जो मनुष्यों में भी तेजी से फैल सकता है। इसका कारण *बरक्रेप्टा मैलियायी* नामक जीवाणु है। इस रोग में खाँसी, श्वसन कष्ट (व्यथा), नाक में रक्तस्राव तथा नाक की भित्ती पर नासूर हो जाता है, जिनमें से पीला तेलीय मवाद निकलता है तथा आसपास की गिल्टियों (लिम्फ ग्रन्थियों) की सूजन होती है। अधोत्वचीय फोड़े भी उत्पन्न हो जाते हैं जो फट जाते हैं तथा उनमें से शहद रूपी मवाद निकलता है। पुष्टिकरण हेतु सीरम से काम्प्लीमेट फिक्सेसन परीक्षण लगा सकते हैं। साधारणतः मैलीन आंख के कोने पर इन्ट्राडर्मल विधि से 0.1 मिली0 लगाते हैं तथा 48 घंटे पश्चात् आँख में पानी भरी सूजन तथा तीक्ष्ण मवाद युक्त कंजक्टीवाईटिस रोग से प्रभावित होने के लक्षण उत्पन्न होते हैं। इस रोग का उपचार नहीं करते अपितु पशु को ग्लैंडर तथा फार्सी नियम 1899 के अन्तर्गत नष्ट कर देते हैं।

11. गलघोंटू (हिमोरेजिक सेप्टीसीमिया): यह *पासच्यूरेला मल्टोसिडा* द्वारा गाय, भैंस, भेड़ तथा बकरी में होने वाला तीव्र विषाक्तता रोग है। यह सामान्यतः मानसून की शुरूआत में होता है। इस रोग में तेज बुखार, गले तथा जिह्वा की सूजन, थूक गिरना तथा जिह्वा का बाहर निकलना आसानी से देखा जा सकता है। निमोनिया व दस्त भी 24 घंटे से 3 दिन तक रहता है। तत्पश्चात् पशु की मृत्यु हो जाती है। उपचार हेतु कोई भी सल्फा दवा दे सकते हैं। जैसे सल्फामोथाजीन 100–200 मिली0 (33.3 प्रतिशत घोल) या बायोट्रिम अन्तःशिरीय विधि से 15–30 मि.ली. वयस्क पशु में दे सकते हैं। इसके अतिरिक्त टैरामाइसिन या ऑक्सीस्टैक्लिन भी 40–60 मिली0 अन्तःशिरीय विधि से प्रभावशील है। रोग से बचाव हेतु एलम

प्रेसीपिटेटिड एच.एस. वैक्सीन 5 मिली0 अधोत्वचीय विधि से प्रयोग करते हैं।

12. खुर गलन (इनफेक्सियस फुटरौट): यह *स्फेरोफोरस नेक्रोफोरस* द्वारा होता है तथा इसमें अधिकतर अन्य जीवाणुओं का प्रकोप भी होता है। तेज बुखार तथा त्वचा व खुर के जुड़ाव वाले भाग की सूजन के साथ पैर में लंगड़ेपन के लक्षण आते हैं। उंगलियों के बीच के स्थान पर दरार पड़ जाती है तथा उनमें मवाद भर जाता है। उपचार हेतु सल्फा दवाओं का इन्जेक्सन प्रयोग करना चाहिए तथा 5 प्रतिशत कॉपर सल्फेट पट्टी में भिगोकर घाव वाले स्थान पर इस्तेमाल करना चाहिए।

13. पुराना दस्त (जे.डी.): यह रोग सामान्यतः 2–6 वर्ष की गाय में होता है। इस रोग से भेड़ तथा बकरी भी प्रभावित होते हैं। यह *माइक्रोबैक्टीरियम पैराट्यूबरकुलोसिस* द्वारा होता है। इसमें कमजोरी आती है, परन्तु भूख सामान्य होती है। बार–बार दस्त होते हैं। आँतों की श्लेष्मा मोटी तथा खुरदरी हो जाती है। रोग का पुष्टिकरण मल तथा बड़ी आंत के आखिरी भाग (रेक्टम) की श्लेष्मा कला की कोशिकाओं में एसिड फास्ट बेसीलाई को देखकर करते हैं। इसके अतिरिक्त एक एलर्जिक टेस्ट है जिसे जोनिन टेस्ट कहते हैं। इसमें 0.2 मिली0 जोनिन एन्टीजन को गर्दन की त्वचा पर किसी एक स्थान में अधोत्वचीय (इन्ट्राडर्मल) विधि से डालते हैं। 48 घंटे के उपरान्त 5 मिमी0 से ज्यादा हुई सूजन रोग की उपस्थिति को दर्शाता है। उपचार हेतु 10 मि.ली. प्रति किलो शरीर भार की दर से स्ट्रेप्टोमाइसिन लम्बे समय तक देने से सुधार हो जाता है, पर यह उपचार अत्यधिक महंगा होने के कारण उपयोगी नहीं है। नियंत्रण हेतु प्रभावित पशु को अलग कर दें। इस रोग का कोई टीका (वैक्सीन) भारत में उपलब्ध नहीं है।

14. लेप्टोस्पाइरोसिसः यह रोग लेप्टोस्पाइरा की विभिन्न जातियों द्वारा होता है। इसका संक्रमण मनुष्यों में भी हो सकता है। चूहे इसके कैरियर होते हैं अर्थात् चूहों में यह जीवाणु उपस्थित रहते हुए भी रोग नहीं करता पर अन्य पशुओं तक रोग करने हेतु इसे पहुँचाता है। स्वस्थ पशु में संक्रमण आहार, पानी तथा त्वचा भेदन द्वारा हो सकता है। यह जीव गुर्दे तथा यकृत में सामान्यतः उपस्थित रहता है। इस रोग के लक्षण हैं पीलिया, गर्भपात तथा ज्वर । इसके अतिरिक्त दुधारू गाय के दूध में रक्त भी आता है। यह बूढ़े कुत्तों में अधिक पाया जाता है तथा उनमें गुर्दे का शोथ करता है।

इस रोग का पुष्टिकरण मूत्र का सूक्ष्म परीक्षण तथा सीरम एग्लूटीनेशन टेस्ट द्वारा करते हैं। पुष्टिकरण गुर्दे तथा यकृत के टुकड़े 10 प्रतिशत फार्मेलिन में प्रयोगशाला भेजें। उपचार हेतु टेट्रासाइक्लिन यदि 7 से 10 दिन तक दिया जाये तो प्रभावशाली है। दीर्घ क्रियाशील एंटीबायोटिक्स अधिक उपयोगी है। रोग से बचाव हेतु बड़े पशुओं के लिए टीका

उपलब्ध नहीं है। एक संसर्गित वैक्सीन कुत्तों के लिए उपलब्ध है जो 3 माह पर प्रदान करते हैं और बूस्टर चार माह की उम्र पर लगाते हैं और इसका पुनः प्रत्येक वर्ष टीका लगाते हैं।

15. घुमरी रोग (लिस्टीरियोसिस): यह *लिस्टीरिया मोनोसाइटोजेनीज* द्वारा होने वाला संक्रामक रोग है। इसमें पशु निरूद्देश्य इधर–उधर घूमता है, सिर दबाता है तथा कभी पशु गुम्म भी हो जाता है। कभी–कभी गर्भपात तथा ज्वर भी होता है। इस रोग के पुष्टिकरण एवं रोग कारक की पहचान हेतु सूक्ष्मजीवी परीक्षण करते हैं और उपचार हेतु स्ट्रेप्टोपेनीसिलिन तथा क्लोरटेट्रासाइक्लिन की ऊँची खुराक 10–15 दिनों तक देते हैं।

16. स्ट्रैंगेल्स (इक्वाइन डिस्टेम्पर): यह *स्ट्रेप्टोकोकस इक्वाई* द्वारा होने वाला घोड़ों का विशिष्ट संक्रमण है जिससे युवा घोड़े ज्यादा प्रभावित होते हैं। शुरूआत में तेज बुखार, नाक से श्राव तथा गिल्टियों की सूजन के साथ (फैरिंजाईटिस) तथा गर्दन पर जगह–जगह घाव होता जिससे मवाद निकलता है। पुष्टिकरण हेतु मवाद से जीवाणु की पहचान करते हैं। उपचार हेतु स्ट्रैप्टोपेनिसिलिन तथा टेट्रासाइक्लिन अत्यधिक प्रभावशील है। इस रोग से बचाव हेतु टीका भारतीय पशु अनुसंधान संस्थान में उपलब्ध है। जिसकी खुराक 2/3/5 मिली0 अधोत्वचीय विधि से एक सप्ताह के अन्तर पर है। आयाति वैक्सीन जैसे इक्वीबैक–द्वितीय (फोट डौज), स्टैप गार्ड तथा स्ट्रैंगेलस (हेवर कटर) तथा स्टैपवैक–द्वितीय जो अक्रिय टीका है तथा एम प्रोटीन टीका भी घोड़ों के फार्म पर उपयोग की जाती है। इसका 1 मिली0 3 माह की उम्र पर तथा 2 मि.ली. या 3 मि.ली. खुराक, इसके बाद 3–3 सप्ताह के अन्तर पर दें।

17. टिटेनस: यह *क्लॉस्ट्रीडियम टिटेनाई* के द्वारा उत्पन्न किय गये विष के अवशोषण के कारण होता है। यह चोट के संक्रमण के कारण होने वाला एक तीव्र रोग है। दुर्घटना तथा शल्य क्रिया द्वारा बने घाव यदि मिट्टी द्वारा गंदे हो जाए तो इस रोग के होने की संभावना बढ़ जाती है। घोड़े तथा मनुष्य में यह रोग अधिक होता है। गाय, भेड़, बकरी तथा कुत्ते भी इस रोग से प्रभावित होते हैं। इस रोग में पहले पशु उत्तेजित होता है फिर पेशियों में अकड़न तथा पीड़ा होती है। पेशियों में कम्पन भी होती है। तीसरी पुतली फैल जाती है तथा पशु काठ के घोड़े जैसा कड़ा हो जाता है।

उपचार हेतु घाव को धोयें तथा पेनिसिलिन से पट्टी करें। उच्च खुराक में एंटी टिटेनस सीरम दें। 3 लाख इ0यू0 पहली खुराक तथा 12 घंटे के अन्तर पर दोहरायें। पेनिसिलिन की ऊँची खुराक का इन्जेक्सन दें। पेशियों को शिथिल करने के लिए 10 मिली0 लार्जएक्टिल अधोत्वचीय

विधि से दें। प्रभावित पशु को अंधेरे कमरे में रखें तथा आराम में व्यवधान न करें। रोग से बचाव हेतु ए.टी.एस.–1500–3000 अन्तर्राष्ट्रीय मानक देना चाहिए। इसे किसी भी आकस्मिक शल्य क्रिया के पहले तथा घोड़ों में चोट लगने के तुरन्त बाद अवश्य देना चाहिए। टिटेनस टॉक्साइड 1 मिली0 (1500 अन्तर्राष्ट्रीय मानक) शल्य क्रिया से एक सप्ताह पूर्व देना चाहिए। टॉक्साइड से वार्षिक वैक्सीनेशन नही करना चाहिए। घोड़ों में एंटीटॉक्सिन सीरम द्वारा हिपेटाइटिस हो सकती है। अतः टॉक्साइड–टी इस्तेमाल करना श्रेष्ठ रहता है।

18. छय रोग (ट्यूबरक्यूलोसिस): इस रोग में पशु धीरे–धीरे कमजोर होता है। यह *माइकोबैक्टीरियम बोविस* द्वारा होता है। इस रोग में फेफड़े प्रभावित होते हैं। पशु को दीर्घस्थायी खांसी होती है। पुनर्वर्ती बुखार, पशु का कमजोर होना, बालों की चमक खोना तथा दस्त इस रोग में अन्य लक्षण हैं। रोग की पहचान हेतु ट्यूबरकुलिन परीक्षण करते हैं, जिसमें 0.1 मिली0 पी.पी.डी. त्वचा में गर्दन की एक तरफ अधोत्वचीय विधि (Intradermal) से लगाते हैं। इसके लिए विशिष्ट ट्यूबरकुलिन सिरिंज तथा सूई इस्तेमाल होती है। एक छोटी गोली जैसी सूजन इन्जेक्सन के स्थान पर हो जाती है। 48 घंटे उपरान्त यदि टीका लगाए गये स्थान पर स्पष्ट प्रतिक्रिया न दिखे तो 0.1 मिली0 पी.पी.डी. फिर से उसी स्थान पर डालें तथा दूसरे इन्जेक्सन के 24 घंटे उपरान्त देखें। इन्जेक्सन के स्थान पर एक स्पष्ट शोथयुक्त सूजन जो कि 5 मि.मी. से अधिक हो तो पशु को रोग से प्रभावित समझना चाहिए। उपचार हेतु स्ट्रेप्टोमाइसिन तथा पैराअमीनोसैलीसिलिक एसिड, आइसोनिआजिड मनुष्यों के लिए लाभदायक हैं परन्तु यह उपचार पशुओं में लम्बा तथा खर्चीला है तथा इसके द्वारा संक्रमण का नियंत्रण निश्चित नहीं है। इसका नियंत्रण पशुओं की जाँच तथा उसे अलग करके ही करना सम्भव है।

19. थनैला (थनो का शोथ): थनैला किसी भी रोग कारक जैसे चोट, रसायन, विषाक्तता जीवाणु, विषाणु, कवक, परजीवी के कारण हो सकता है परन्तु थोड़े समय पश्चात् यह जीवाणु संक्रमण से प्रभावित हो जाता है। अतः इसे जीवाणु जनित रोगों की श्रेणी में ही समझना ठीक होगा। यद्यपि थनैला किसी भी अवस्था में हो सकता है, परन्तु यह प्रसव के ठीक उपरान्त अधिक होता है। उपरोक्त के अतिरिक्त अधिक उत्पादन वाले पशुओं में गर्भावस्था के अन्तिम 14–15 दिनों में थनों के अत्यधिक भरने तथा उसमें तरल इकठ्ठा होने के कारण या अनेकों प्रकार के संक्रमण के कारण थनैला रोग होता है। तीव्र प्रकार का थनैला अधिकतर स्टेफाइलोकोकाई तथा स्ट्रैप्टोकोकाई के कारण होता है। इसमें अयन कठोर, फूला हुआ गर्म तथा

दर्द युक्त हो जाता है। दूध कम तथा पतला हो जाता है। कभी–कभी उसमें से मवाद भी आने लगता है। पहचान तो स्पष्ट लक्षणों के कारण हो जाती है परन्तु विशेष रोग कारक जानने हेतु प्रयोगशाला परीक्षण आवश्यक है। थनैला के उपचार में कभी देरी न करें। रोगग्रस्त पशु को अलग कर लें तथा पहले स्वस्थ थनों को दुहें। रोगग्रस्त थन में से जितना हो सके दूध निकाल लें तथा पेंडिस्ट्रिन–एस.एच., औरियोमाइसिन, निफुरान, फ्लोक्लॉक्स, टिलौक्स, एल्सीक्लॉक्स एवं क्लौक्सिक्विक कोई भी दवा अन्तःथन विधि से पूरा दूध निकालने के उपरान्त कम से कम लगातार 3 दिन के लिए दोनों समय देना चाहिए। दवा देने के कम से कम 3 दिन उपरान्त तक दूध को मुनष्यों के लिए उपयोग न करें। लिवामौल–7.50 मिली0 2–3 दिन के लिए सहायक उपचार के रूप में दे सकते हैं। प्रतिजैविक की अनुपस्थिति में पिवीपॉल (कांसमोरैक्स) या बीटाडीन (वोकार्ट) जो असंतापक आयोडीनयुक्त दवायें हैं, का उपयोग किया जा सकता है। एक्रीफ्लेविन के साथ ग्लिसरीन का 1 : 10000 अनुपात, 20 मिली0 प्रति ग्रस्त थन, 3 दिन के लिए दिया जा सकता है। ट्राइएक्शन, एसजीपाईरिन, सुगानरिल, ऑक्सी–पी, आइबुजेसिक या डोलोनेक्स, 1 गोली दिन में दो बार, 3–4 दिन के लिए कुत्ते तथा अन्य छोटे पशुओं में प्रतिजैविक औषधि के साथ दे सकते हैं।

दीर्घस्थायी थनैला में सूजन तथा दर्द बहुत कम अथवा नहीं होती है। दूध में यदि सावधानीपूर्वक परीक्षण किया जाय तभी विकार दिखाई देते हैं। अयन तन्तुमय हो जाता है तथा हर अगले दुग्ध काल में दूध का उत्पादन क्षीण होने लगता है। उपचार तीव्र थनैला की तरह ही करना चाहिए। थनैला से बचाव हेतु थनों की किसी भी चोट को अनदेखा न करें, दुग्धशाला की सफाई अत्यधिक आवश्यक है तथा थनों को दुहने से पहले तथा बाद में ब्लीचिंग पाउडर का 1 प्रतिशत घोल या क्लोरोसोल या पिवीपॉल या सैवलॉन या बीटाडीन के घोल से नियमित रूप से धोना चाहिए। रोगग्रस्त पशु को अलग कर दें तथा आखिरी में दुहें। दूध पूरा तथा ठीक प्रकार से निकालना चाहिए।

❑❑❑

16 विषाणु जनित रोग

विषाणु सभी रोग कारकों में सबसे छोटे होते हैं। यह शरीर की जीवित कोशिकाओं में ही अपनी संख्या बढ़ाते हैं। जीवित कोशिका के बाहर ये मर जाते हैं। इनके विरूद्ध कोई औषधि नहीं होती है। विषाणु से प्रभावित पशु को लक्षणों के आधार पर उपचारित करते हैं।

1. घोड़ों की अफ्रीकन बिमारी (एफ्रीकन हॉर्स सिकनेस): यह अत्यधिक सांघातंक संक्रामक रोग है। यह एक विषाणु द्वारा घोड़ों में होता है तथा कीड़े–मकौड़ों द्वारा फैलता है। इस रोग में तीक्ष्ण खाँसी, श्वसन में समस्या, नाक से श्राव तथा फेफड़ों में पानी भर जाता है। 4–5 दिन में मृत्यु हो जाती है। अधिकांश रोगी पशु में टेम्पोरल फोसा तथा पलकों में पानी भर जाता है। मुख की श्लेष्मकला नीली पड़ जाती है तथा हृदय की झिल्ली में भी पानी भर जाता है। यह रोग 2–3 सप्ताह तक रहता है। इस रोग से प्रभावित अधिकांश पशुओं की मृत्यु हो जाती है। रोग की पहचान लक्षण द्वारा मस्तिष्क जल के परीक्षण द्वारा करते हैं। इस रोग का उपचार सम्भव नहीं है। काटने वाले कीड़े तथा मक्खियों का नियंत्रण करें तथा प्रभावित पशु को अलग कर देना ही सम्भव है। रोग से बचाव हेतु भारतीय पशु चिकित्सा अनुसंधान संस्थान, इज्जतनगर जिला बरेली में टीका उपलब्ध है जिसे 5 मिली0 अधोत्वचीय विधि से प्रयोग करते हैं।

2. नीली जिह्वा (ब्ल्यू टंग): *यह प्रमुखत:* भेड़ का रोग है तथा कभी–कभी गाय में भी हो जाता है। यह भी कीड़े–मकौड़ों द्वारा फैलता है। यह रोग भारत में पाया जाता है। इस रोग में पहले तीक्ष्ण ज्वर होता है जो 5–6 दिन तक रहता है। नाक से श्राव थूक तथा मुंह का शोध, सूजन तथा जबड़ों एवं जिह्वा में पानी भर जाता है। मुँह से दुर्गन्ध आती है, जिह्वा की अन्दरूनी सतह पर नासूर बन जाते हैं जो बाद में बैंगनी रंग के हो जाते हैं। पैरों में लगड़ापन आता है तथा खुर–खाल जोड़ के ऊपर एक गहरे रंग की पट्टी बन जाती है जो रोग के निदान में सहायक है। इस रोग से मृत्यु दर 30 प्रतिशत है। रोग की पहचान मुख्यतया रोग के इतिहास तथा लक्षणों के आधार पर करते हैं। इस रोग का कोई विशिष्ट उपचार नहीं है। लक्षणों को ठीक करने की दवा देनी चाहिए तथा बचाव हेतु टीकाकरण करना चाहिए।

3. कुत्तों का डिस्टेम्पर: यह एक वायु जनित, स्पर्श से फैलने वाला कुत्तों

का रोग है जो पैरामिक्सों विषाणु द्वारा होता है। यह विश्वभर में होता है जो छोटे कुत्तों में अधिक होता है, परन्तु यह बड़े कुत्तों में भी हो सकता है। इस रोग में तेज बुखार, भूख न लगना, श्वसन व्यथा, खूनी दस्त तथा शरीर में पानी की कमी हो जाती है। 3 माह की उम्र से बड़े कुत्तों में यह अलग रूप में होता है। पहले 2–3 दिन तक बुखार, नाक से जलीय श्राव तथा आंखों की श्लेष्माकला लाल हो जाती है। तापमान 2–3 दिन में सामान्य हो जाता है तथा 2–3 दिन बाद तापमान फिर से बढ़ता है। इसके साथ ही श्वसन में परेशानी खूनी दस्त, उदर की सतह पर फुन्सियाँ, उल्टी तथा पैरों की तली मोटी हो जाती है। तन्त्रिका तन्त्र सम्बन्धी लक्षण इस अवस्था के उपरान्त आते हैं जिसमें मिरगीरूपी आक्षेप तथा पीड़ा होती है। कुछ कुत्तों में मांसपेशियों में कंपन तथा शरीर की सभी या किसी भाग की पेशियों का खिंचाव होता है। पशु कुछ खा या पी नहीं पाता तथा धीरे–धीरे पशु की मृत्यु हो जाती है। रोग की पहचान लक्षण तथा टीकाकरण न होने के इतिहास की जानकारी के आधार पर करते हैं। शुरूआत में बुखार की अवस्था में खून की जाँच करने पर श्वेत रक्त कोशिकाओं का स्तर गिर जाता है। बाद की अवस्थाओं में ये संक्रमण के कारण बढ़ जाता है।

उपचार हेतु प्रतिजैविक औषधि देनी चाहिए। साथ में 2000 मि.ली. विट–सी 3–4 दिन तक डैक्ट्रोज घोल के साथ अन्तःशिरीय विधि से देना चाहिए। रोग से बचाव हेतु डिस्टेम्पर मात्र या फिर डिस्टेम्पर–हिपेटाइटिस लैप्टोस्पाइरोसिस का टीका उपलब्ध है जो 12–14 सप्ताह की उम्र में पहली बार लगाते हैं। एक माह बाद बूस्टर देते हैं। तत्पश्चात् प्रत्येक वर्ष टीकाकरण करना चाहिए।

4. मुंह की खाज कॅटेजियस इक्थाइमा (औफ या सोरमाऊथ): यह स्पर्श से फैलने वाला भेड़ तथा बकरी का रोग है। इस रोग से प्रभावित पशु में पहले फुन्सियाँ बनती हैं फिर चेचक जैसे लक्षण अधरों पर उत्पन्न हो जाते हैं। पशु को चरने एवं खाने में कठिनाई महसूस होती है। ज्वर कदाचित ही होता है। कोई विशिष्ट उपचार नहीं है। एन्टीसेप्टिक मरहम तथा लोशन लगाते हैं।

5. गाय की चेचक (काउ पॉक्स): यह गाय में स्पर्श से फैलने वाला रोग है। इसके लक्षण अयन तथा थनों की त्वचा पर दिखते हैं। यह सामान्यतः पपड़ी की अवस्था में पहचाना जाता है। उपचार हेतु एन्टीसेप्टिक मरहम, जैसे टैरामाइसिन मरहम, सैवलॉन क्रीम या बोरोलिन मरहम आदि दिन में कई बार लगाते हैं।

6. तीन दिनी ज्वर (एफीमेरल ज्वर): यह डेंगू ज्वर या तीवा के नाम से

भी जाना जाता है। यह गायों का विषाणु से होने वाला तीव्र ज्वर है जो मच्छर द्वारा फैलता है। इस रोग से ग्रसित पशु में आकस्मिक तथा तेज बुखार, भूख न लगना, पेशियों में अकड़न तथा एक या अधिक पैरों का लगड़ापन होता है एवं बाद में जीवाणु संक्रमण के कारण निमोनिया हो सकता है। उपचार लक्षणों के अनुसार करते हैं। सामान्यतः पशु की मृत्यु नहीं होती है। इस रोग का टीका उपलब्ध नहीं है। होम्योपैथी की एकोनाइट 200 शक्ति की दवा लाभकारी है।

7. घोड़े में इनफ्लूएंजा (संक्रामक ब्रोंकाइटिस या खाँसी): यह घोड़े में होने वाला एक संक्रामक श्वसन रोग है। इसमें ज्वर तथा निरन्तर खाँसी होती है। यद्यपि इससे हर आयु के पशु ग्रस्त होते हैं परन्तु 2 वर्ष से अधिक आयु के पशु अधिक प्रभावित होते हैं। इसके कारण पशु बहुत कमजोर हो जाता है। इस रोग के लक्षण हैं, पहले तेज ज्वर (104-106^{0}F), सूखी खाँसी जो बाद में नम हो जाती है। पशु 2–3 सप्ताह तक बीमार रहता है। खाँसी, श्वसन में समस्या नाक से श्राव गिल्टियों की सूजन, कमजोरी तथा भूख नहीं लगती। युवा पशुओं में बाद में जीवाणुओं के संक्रमण के कारण निमोनिया हो सकता है। रोग, लक्षणों के अतिरिक्त रक्त परीक्षण द्वारा भी पहचाना जा सकता है। ज्वर की अवस्था में श्वेत रक्त कोशिकाओं का स्तर बहुत गिर जाता है। उपचार हेतु दीर्घ क्रियाशील प्रति जैविक ऊँची खुराक में दें। अत्यधिक देखभाल करें। टीकाकरण हेतु टीके की पहली दो खुराक 1 मि.ली. 2 सप्ताह के अन्तर पर तथा इसके उपरान्त वार्षिक टीकाकरण करना चाहिए।

8. खुरपका–मुंहपका रोग: यह स्पर्श से होने वाला गाय, भैसों, भेड़, बकरी एवं सूकर आदि का रोग है। यह विदेशी तथा संकर पशु में अधिक होता है। उपचार हेतु जीवाणु संक्रमण के नियंत्रण के लिए प्रति जैविक औषधि दें। अन्य उपचार लक्षणों के आधार पर करना चाहिए। इस रोग से प्रभावित पशु को तेज ज्वर होता है, मुंह से लार गिरती है। मुंह तथा खुर के ठीक ऊपर तथा खुरों के बीच में छाले पड़ जाते हैं। 2–3 दिन बाद लार की जगह झाग मुंह से निकलता प्रतीत होता है। पशु चारा ग्रहण नहीं कर पाता है तथा रोग का निदान लक्षणों के आधार पर करते हैं। टीकाकरण द्वारा रोग से बचाव हेतु 3 माह की उम्र पर पहला टीका, फिर एक माह के उपरान्त तक बूस्टर खुराक दें तथा हर 6 माह पर पुनः टीकाकरण करें।

9. कुत्तों में पारवो विषाणु संक्रमण (हिमोरेजिक गैस्ट्रोइन्टराइटिस): यह कुत्तों को प्रभावित करने वाला रोग है जो पारवों विषाणु द्वारा होता है। इस रोग से सभी आयु के कुत्ते प्रभावित होते हैं, परन्तु छोटे कुत्तों में मृत्यु की सम्भावना अधिक होती है। रोगी पशु को खूनी पेचिस तथा वमन होता है।

पशु में कमजोरी तथा शरीर में पानी की कमी हो जाती है। कुछ स्थितियों में वायरस के कारण हृदय की पेशियों का शोथ तथा श्वसन सम्बन्धी समस्यायें भी हो जाती हैं। रोग के निदान हेतु लक्षणों के अतिरिक्त रक्त परीक्षण भी करते हैं जिसमें श्वेत रक्त कोशिकाओं का स्तर गिर जाता है। रोग के नियंत्रण हेतु प्रतिजैविक औषधि तथा तरल भोजन व इलैक्ट्रोलाइट अंतःशीरा से देना चाहिए। साथ ही उच्च खुराक में एसकार्बिक अम्ल, विटामिन–के तथा, बौट्रोपेस आदि आंतों के रक्त स्राव के नियंत्रित करने के लिए आवश्यक है। रोग से बचाव हेतु पारवो विषाणु के खिलाफ टीका उपलब्ध है। टीकाकरण 6–8 सप्ताह की उम्र पर करते है तथा फिर प्रत्येक वर्ष करते है।

10. संक्रामक यकृत शोथ (इफैक्शिय कैनाइल हिपेटाइटिस): इसे कुत्तों में एडिनोवायरस संक्रमण भी कहते हैं। यह कुत्तों का विशिष्ट रोग है तथा मनुष्यों में नहीं फैलता। इस रोग से छोटे कुत्ते अधिक प्रभावित होते हैं। इस रोग के लक्षण है बुखार जोकि घटता–बढ़ता रहता है, परन्तु कभी सामान्य नहीं होता, पीलिया, प्यास, भूख न लगना, मुंह की श्लेष्मा लाल हो जाना। स्पर्श गोचन पर उदर नर्म लगता है तथा यकृत के स्थान पर दर्द होता है। सिर तथा मुंह के अधोत्वचीय भाग में तरल इकट्ठा हो जाता है तथा आँख धुंधली हो जाती है। निदान इतिहास एवं लक्षणों द्वारा करते हैं। इसका उपचार विशिष्ट नहीं है। प्रतिजैविक तथा यकृत वर्धक दें। आहार अधिक शर्करा युक्त तथा शीघ्र पचने वाला हो तथा बचाव हेतु टीकाकरण डिस्टैम्पर तथा लैप्टोस्पाइरोसिस के साथ करते हैं।

11. भैंसें का हरपीस वायरस–1 संक्रामण (इन्फैक्शियस बोवाइन राइनोट्रेकाइटिस): यह गाय–भैंसों का विषाणु रोग है। यह नवजात बछड़ों में इनसिफेलाइटिस, मादाओं में संक्रामक जननांग रोग तथा बैलों में शिश्न शोथ करता है। इस रोग में पशु को ज्वर होता है तथा नाक की श्लेष्मकला लाल हो जाती है। श्वसन व्यथा, गर्भपात तथा गर्भधारण क्षमता कम हो जाती है। रोग निदान लक्षण द्वारा करते हैं। उपचार लक्षणों पर आधारित है। बचाव हेतु गाय तथा भैंस (300 कि.ग्रा. से अधिक) में 5 मि.ली. अधोत्वचीय टीकाकरण करते हैं एवं युवा पशु और बछड़े (300 कि.ग्रा. से कम) में 3 मिली0 टीका लगाते हैं।

12. श्लेष्मीय ज्वर (म्यूकोजल डिसीज): यह गाय का एक संक्रमण रोग है जिसमें पाचन तंत्र प्रभावित होता है तथा दस्त हो जाते हैं। इस रोग में एक साथ अधिकांश पशु प्रभावित होते हैं तथा मृत्युदर 5–6 प्रतिशत होती है। यह रोग रिंडरपेस्ट के समान है। युवा पशु अधिक प्रभावित होते हैं। इस रोग की पुष्टिकरण हेतु रक्त, प्लीहा के टुकड़े एवं आहार नाल की लिंफ

ग्रन्थियाँ बर्फ में भेजें। ठीक हुए पशु का सीरम विशिष्ट एंटीबॉडी की जाँच के लिए भेजा जा सकता है। उपचार विशिष्ट नहीं है। ठीक हुए पशु का 100–200 मिली0 सीरम अंतःशिरीय विधि से रोगी पशु को दे सकते हैं। अन्य उपचार लक्षण के आधार पर करते हैं।

13. बोवाइन मेलिग्नैंट कटार (बी.एम.सी.): यह एक तीव्र, स्पर्श से फैलने वाला, गाय में विषाणु से होने वाला संक्रामक रोग है। इसमें ज्वर, श्लेष्मयुक्त शोध, रक्तिम (लाल) आँख, दस्त, दिमागी विकार तथा लिम्ब ग्रन्थियों में सूजन होती है। यह रोग श्लेष्मीय ज्वर से मिलता–जुलता है। इस रोग में मृत्यु दर 25–30 प्रतिशत है। इस रोग में नाक से मवाद का श्राव होता है। पलकें सूज जाती हैं। इस रोग का पुष्टिकरण लक्षण द्वारा ही करते हैं। विशिष्ठ उपचार न होने के कारण लक्षण अनुसार करते हैं। रोग से बचाव हेतु प्रभावित पशु को अलग कर दें। इस रोग का कोई टीका उपलब्ध नहीं है।

14. रेबीजः यह सभी गर्म रक्त वाले पशुओं एवं मनुष्यों का रोग है। इसमें तंत्रिका तंत्र प्रभावित होता है। यह संक्रमित पशु के काटने से फैलता है। काटने के स्थान के आधार पर इस रोग का लक्षण उत्पन्न होने की अवधि निश्चित होती है अर्थात सिर से जितना दूर काटा गया है उतना ही देर से लक्षण उत्पन्न होगें। कुत्ता इसका प्रमुख स्रोत है। यह रोग जंगली पशु जैसे लोमड़ी तथा भेड़िये में भी पाया जाता है। पहला लक्षण स्वभाव में बदलाव है। उत्तेजना रूप के रोग में पशु अत्यधिक चौकन्ना हो जाता है। कभी भी बिना कारण के भी काट सकता है। उसकी चाल में लड़खड़ाहट आती है तथा वह थूक गिराता है। उसकी आवाज विशिष्ट प्रकार की हो जाती है। इसके लकवा रूप में पशु में तीक्ष्ण अवसाद होता है। पशु लेट जाता है। अत्यधिक थूक गिरता है तथा कुछ भी निगल नहीं पाता। यह रोग एक से छः दिन तक रहता है। प्रभावित पशु को अलग कर देना चाहिए तथा चौदह दिन तक उसका निरीक्षण करना चाहिए। रोग का निदान लक्षणों के आधार पर करते हैं तथा पुष्टिकरण हेतु पूर्ण मस्तिष्क एक पॉलीथिन की थैली में बर्फ के डिब्बे में डालकर या फिर मस्तिष्क को 50 प्रतिशत ग्लिसरीन में रखकर विशेष प्रयोगशाला में भेजें।

कुत्ते के काटने के कारण हुए घाव को तुरन्त किसी साधारण साबुन से धोयें तथा साफ करें। यदि यह 10–15 मिनट के अन्तर्गत कर लिया जाए तो संक्रमण की संभावना काफी कम हो जाती है। रक्तस्राव रोकने के लिए तनु नाइट्रिक अम्ल अथवा तनु कार्बोलिक अम्ल लगायें या लाइफबॉय साबुन से धो दें। काटने के पश्चात् गाय, भैंस तथा घोड़े में 20 मिली0 कार्बोलिक एसिड युक्त वैक्सीन अधोत्वचीय 14 दिन तक लगाते हैं।

कुत्ते तथा बिल्ली में 3 मिली0 7 दिन तक लगाते हैं। भेड़ तथा बकरी में 5 मिली0 14 दिन तक लगाते हैं। इसके अतिरिक्त सभी प्रकार के पशुओं के लिए 1 मिली0 अधोत्वचीय विधि से टिस्सू कल्चर टीका काटने के उपरान्त 0–3–7–14–28–90वें दिन पर लगाया जाता है। इसके अलावा घाव के स्थान पर अतिसान्द्र (हाइपरइम्यून) सीरम डालें यह घाव में स्थित विषाणु को निष्क्रिय करने में उपयोगी है। यह काफी मंहगा है। अतः यह मनुष्य तथा मंहगे पशुओं के लिए ही उपयोग किया जाता है। काटने से पहले बचाव हेतु टिशु कल्चर अक्रिय टीका 1 मि.ली. अधोत्वचीय या अन्तःपेशीय विधि से कुत्तों तथा अन्य पशुओं में लगाते हैं।

15. पौंकनी रोग (पी.पी.आर.): यह तीव्र, स्पर्श से फैलने वाला रोमंथी पशुओं का विषाणु जनित रोग है। विदेशी तथा संकर गाय इस रोग से अत्यधिक प्रभावित होते हैं। यह रोग बहुत तीक्ष्ण होता है। पूरे देश में इस रोग को भी आर.पी. की तरह समूह टीका कार्यक्रम द्वारा नियंत्रण कर लिया गया है। इस रोग में तेज ज्वर, अश्रुस्राव, थूकश्राव तथा मुंह की श्लेष्मकला पर चावल के दानों जैसे नासूर बन जाते हैं। इसमें दुर्गन्ध आती है तथा पशु को निमोनिया हो जाता है। शरीर में पानी की अत्यधिक कमी हो जाती है तथा पशु कमजोर हो जाता है। ये लक्षण हर स्थिति में हमेशा नहीं पाये जाते हैं। इस रोग के निदान हेतु सिट्रेट युक्त रक्त, प्लीहा तथा आहार नाल की लिम्फ ग्रन्थि विषाणु की पहचान करने के लिए भेजे जाते हैं। इस रोग का कोई विशिष्ट उपचार नहीं है। प्राथमिक जटिलताओं के लिए प्रतिजैविक प्रयोग करना चाहिए तथा लक्षणों के अनुसार अन्य उपचार तथा बचाव के लिए टीकाकरण करना चाहिए। टीका प्रतिवर्ष मार्च–अप्रैल माह में लगाते हैं।

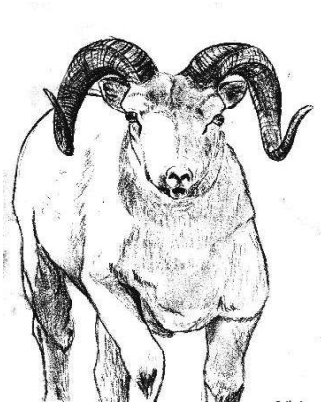

16. भेड़ तथा बकरी में चेचक: भेड़ तथा बकरी में चेचक रोग सामान्य है। इसमें होठों, चेहरे, थन, पूंछ के नीचे तथा कभी–कभी शरीर के अन्य भागों में भी छाला होता है। भेड़ तथा बकरी के विषाणु भिन्न हैं, परन्तु एक दूसरे में रोग कर सकते हैं। इस रोग में मृत्यु दर 50 प्रतिशत तक हो सकती है। युवा भेड़ तथा मेमने गम्भीर रूप से प्रभावित होते हैं। भेड़ में बकरी की चेचक, भेड़ पॉक्स से अधिक गम्भीर है। इस रोग का निदान लक्षणों के द्वारा करते हैं। उपचार हेतु कोई भी प्रतिजैविक दवा का

मरहम पपड़ी पड़ने पर लगाना चाहिए तथा रोग से बचाव हेतु वर्तमान में सिर्फ भेड़ के चेचक का टीका उपलब्ध है। टिशु कल्चर टीका का 0.5 मिली0 अधोत्वचीय विधि से कान की नोक पर लगाया जाता है। टीकाकरण के स्थान को साफ करने के लिए स्प्रिट या आयोडीन का उपयोग न करें।

17. सूकर ज्वर (हॉग कॉलरा): यह सिर्फ सूकर को प्रभावित करने वाला एक तीव्र रोग है। यह बहुत तेजी से फैलता है तथा इसमें मृत्यु दर बहुत अधिक है। इसमें सभी उम्र के सूकर प्रभावित होते हैं। यह विषाणु आहार एवं जल द्वारा फैलता है। अति तीव्र स्थितियों में बिना किसी प्रमुख लक्षणों के युवा सूकर की मृत्यु हो जाती है। इनमें तेज ज्वर (105-107^0) होता है तथा पशु सुस्त हो जाता है। आँखे लाल हो जाती हैं तथा उससे से मवाद का स्राव होता है। तंत्रिका सम्बन्धी लक्षण जैसे आक्षेप, कंपन आदि होते हैं। शुरू की अवस्था में श्वेत रक्त कोशिकाओं का स्तर बहुत गिर जाता है। मृत्यु के उपरान्त परीक्षण करने पर श्लेष्मा सिरोसा के नीचे की सतह, गुर्दे के कैप्सूल के नीचे तथा आँतों (इंलियम सीकम के बीच) के वाल्ब पर बिन्दुरूपी रक्तस्राव पाया जाता है। उपचार हेतु शुरू की अवस्था में 50–150 मिली0 हाइपरइम्यून सीरम देकर रोग को कम किया जाता है। इसके अतिरिक्त लक्षणों के अनुसार दवा देते हैं। रोग से बचाव हेतु टिस्सू कल्चर टीका 1 मि.ली. या क्रिस्टल वॉयलट टीका युवा में 5 मिली0 तथा वयस्क (30 कि.ग्रा. अधिक) में 10 मिली0 अधोत्वचा विधि से लगाया जाता है। यह टीके एक वर्ष तक सुरक्षा प्रदान करते हैं।

❑❑❑

17 परजीवी रोग

परजीवी रोग मुख्यतः अन्तः एवं वाह्य परजीवी के कारण होते हैं। पाचन सम्बन्धी रोगों के बाद परजीवी रोग पशु उत्पादन को सर्वाधिक हानि पहुँचाते हैं।

अ.) अंतःपरजीवी रोग

अन्तःपरजीवी संक्रमण की अत्यधिक आर्थिक महत्ता है। कमजोरी, दस्त, रक्तहीनता, कम दुग्ध उत्पादन, खुरदरी त्वचा तथा बैलों में कार्य अयोग्यता अंतःपरजीवी संक्रमण के कारण होता है। इसका पुष्टिकरण मल परीक्षण द्वारा करते हैं। कुछ परजीवी रक्त पीते हैं जैसे हिमाँकस, ब्यूनोस्टोमम, एंकायलोस्टोमा आदि और कुछ पचा हुआ पोषण ग्रहण करते हैं जैसे पेट का केंचुआ एवं फीताकृमि आदि, जिसके कारण युवा पशुओं की बढ़त कम हो जाती है और वयस्क पशुओं में दूध, माँस, ऊन आदि का उत्पादन कम हो जाता है।

1. यकृत कृमि (फैशियोलिएसिस): यह उन क्षेत्रों में अधिक पाया जाता है जहाँ तालाब आदि हों। इसका संक्रमण मेटासर्केरी (परजीवी की एक अवस्था) युक्त घास की पत्तियों को चरने या खाने के कारण होता है। इसके लक्षण हैं दीर्घस्थायी दस्त, कमजोरी, काला मल, रक्तहीनता, जबड़े के नीचे पानी भरी सूजन (बाटल जा) एवं बढ़ा पेट आदि है। रक्त में प्रोटीन की कमी के लक्षण भी आते हैं। इसका निदान मल परीक्षण में कृमि के अण्डे की पहचान द्वारा करते हैं तथा उपचार हेतु गाय को ऑक्सी क्लोक्जानाइड जैसी दवा 3–4 गाम पिलायें और भेड़ तथा बकरी को 1–2 ग्राम पिलायें। इस दवा के कारण कमजोर पशुओं में विषाक्तता हो सकती है। इसके उपचार के लिए 10 मि.ली. लीवर एक्सट्रैक्ट जैसे बेवेनिल, बीकाम–एल, कान्सिप्लैक्स, लिवोजेन आदि अंतःकृमिनाशक दवा पिलाने के 2 दिन पूर्व से लेकर 2 दिन बाद तक अंतःपेशीय विधि से लगायें। एक अन्य अच्छी दवा ट्राईक्लाबैडांजोल है जो कृमि की सभी अवस्थाओं के लिए प्रभावशील है। इस दवा की 900 मिलीग्राम की गोली प्रति 75 कि.ग्रा. शरीर भार की दर से खिलाई जाती है। इसके अतिरिक्त क्लासेंटल का 15 प्रतिशत घोल 30 मि.ली. पिलायें। इसकी एकमात्र खुराक यकृत कृमि व अन्य सभी कृमि तथा बाहरी परजीवियों का भी नाश करती है। इसके उपरान्त 7 सप्ताह तक पुनर्संक्रमण भी नहीं होता है। यह 30 तथा 500 मि.ली. की बोतल में उपलब्ध है। रोग से बचाव हेतु बत्तख पालन द्वारा घोंघे का नियंत्रण करें।

घोंघे जो कि तालाब के आसपास हों, उन्हें दूर करें। पशु का नियमित कृमि नाशन करें। फरवरी तथा सितम्बर माह में कृमिनाशन अधिक प्रभावी होता है।

2. नाक में सिस्टोजोमा (नेजल ग्रैनुलोमा): यह घोंघे के द्वारा फैलने वाला गाय का एक दूसरा महत्वपूर्ण रोग है। इस रोग में नाक में गोभी में फूल जैसी आकृति उभर जाती है तथा उत्पादन कम हो जाता है। निदान हेतु नाक से होने वाले श्राव तथा मल का विशिष्ट आकार के अण्डों के लिए परीक्षण करते हैं। उपचार हेतु एन्थ्रियोमलीन 6 प्रतिशत घोल का 15 मिली0 गहरा अन्तः पेशीय इन्जेक्सन 3–4 बार एक दिन छोड़कर लगाते हैं। इसके अतिरिक्त टार्टर एमेटिक द्वारा अंतः शिरा विधि से उपचार भी अत्यधिक प्रभावशील है। परन्तु दवा यदि रक्त वाहिनियों से बाहर चली जाए तो कोशिकाओं का नाश कर सकती है व इन्जेक्सन लगाये गये स्थान पर फोड़ा बन सकता है।

3. फीताकृमि (टेपवर्म): यह बछड़ों तथा कुत्तों में सामान्य है और इनका नियंत्रण कठिन है। वयस्क रोमन्थी पशु में हानिरहित संक्रमण करता है। इस परजीवी के चावल जैसे शरीर भाग मल में आते हैं। यह कृमि वयस्क पशुओं में रोग के लक्षण उत्पन्न नहीं कर पाता है। इस रोग से ग्रसित कुत्तों में गुदा को जमीन पर रगड़ना एक विशिष्ट लक्षण है, यद्यपि पिन वर्म के संक्रमण में भी पशु गुदा जमीन पर रगड़ता है। कुत्तों के कुछ कीड़े (टीनिया तथा इकाइनोकोकस) मनुष्य के लिए भी हानिकारक हो सकते हैं क्योंकि इनकी अन्तरमध्य अवस्था मनुष्य में रोग कारक है। मनुष्यों में संक्रमण कुत्तों के नजदीक रहने के कारण होता है।

उपचार हेतु निम्न में से कोई दवा प्रयोग कर सकते हैं:

1. नीलटेप जो 2 प्रतिशत लेड आरसीनेट का चूरन है और इसकी खुराक बछड़ा, भेड़, बकरी में 2.5–5.0 ग्राम प्रति पशु मुख द्वारा दी जाती है।
2. निक्लोसामाइड की 2 गोली प्रतिदिन 2 दिन तक वयस्क कुत्तों के लिए उपयोगी है।
3. प्राजीक्वीन्टल की 50 मि.ग्रा. की गोली, 1 गोली प्रति 10 कि.ग्रा. शरीर भार की दर से खिला सकते हैं।
4. प्राजीप्लस कुत्ते, बिल्लियों, भेड़ तथा बकरी के लिए प्रयोग होता है। इसे 6 सप्ताह के अन्तर पर दोहरायें। इसके अतिरिक्त भुनी हुई सुपारी 2–3 ग्राम चूरन के रूप में कुत्तों तथा छोटे रोमन्थी पशुओं में 10–15 दिन तक दें सकते हैं।

4. पेट का केचुआं (राऊंड वर्म): एसकेरिस तथा टॉक्सोकैरा युवा पशुओं में बहुत सामान्य है। इसके द्वारा आन्त्रशोध के अतिरिक्त निमोनिया भी हो

सकता है। सामान्य कमजोरी, दस्त, बढ़ा पेट, रूखी त्वचा तथा दांत पीसने की ध्वनि/संक्रमण की स्थिति में कभी–कभी आक्षेप तथा दौरों का पड़ना इसके लक्षण हैं। पशुओं के आहारनाल में इस प्राकार के अनेक अंतःपरजीवी पाये जाते हैं जिन्हें नेमेटोड समूह के परजीवी कहते हैं। इन सभी के लक्षण एवं उपचार एक ही प्रकार के होते हैं। इनके उपचार हेतु निम्न में से कोई एक दवा प्रयोग कर सकते हैं:

1. पिपराजीन एडीपेट या सिट्रेट चूरन को बछड़ों में 8–10 ग्राम चारे में मिलाकर देते हैं तथा 6 माह की आयु तक हर माह दोहराते हैं। कुत्तों के बच्चे में 6.0 ग्राम प्रति कि.ग्रा. दूध या आहार में मिलाकर खिलाते हैं।
2. वयस्क पशुओं में एलवेण्डाजॉल, फेनबेन्डाजॉल, मेबेण्डाजॉल, आइवरमेक्टिन, पाइरेन्टल पामोएट इत्यादि को शरीर भार के अनुसार उचित मात्रा में गाय–भैंस, कुत्ते–बिल्ली, घोड़ा–खच्चर इत्यादि में वर्ष दो बार अवश्य देनी चाहिए।

सहायक उपचार के रूप में लीवर एक्सट्रेक्स तथा बी–कॉम्प्लेक्स का इन्जेक्सन तथा आयरन युक्त दवायें जैसे इन्फेरॉन एक दिन छोड़कर 1–2 सप्ताह तक रक्तहीनता के उपचार के लिए देते हैं।

5. कुत्तों में फाइलेरिएसिस (हर्टवर्म): यह रोग *डाइरोफाइलेरिया इमिटिस* के कारण होता है जो मच्छरों द्वारा एक पशु से दूसरे पशु में फैलता है। यह हृदय तथा फेफड़ों में पाया जाता है। इस रोग का निदान रक्त परीक्षण द्वारा माइक्रोफाइलेरिया की पहचान से करते हैं। इसके उपचार हेतु कैरीसाइड 400 मि.ग्रा. गोली देते हैं जिसे 20 दिन उपरान्त दोहराते हैं।

ब.) बाह्य परजीवी रोग

बाह्य परजीवियों में पिस्सू, जूँ, मच्छर तथा फ्लाइ समूह के परजीवी आते हैं। यह अत्यधिक महत्वपूर्ण तथा बहुतायत से पायी जाने वाली समस्या हैं तथा समय से इनका नियंत्रण आवश्यक है। सन्ताप, खुजली, बाल गिरना जैसे प्रभावों के अतिरिक्त इनके द्वारा अन्य सूक्ष्मजीवी संक्रमण तथा रक्तहीनता भी होता है। फ्लाइ के कारण एलर्जिक डरमेटाईटिस होती है। पशु के शरीर पर गैमेक्सीन का 5% पाउडर लगायें। इससे छुटकारा पाने के लिए व्युटॉक्स, क्युटॉक्स या क्लीनर जैसी दवाओं की 2 मि.ली. को 1 लीटर पानी की दर से घोल बनाकर पशु पर, बाड़े में तथा दीवारों पर भी छिड़कना चाहिए। इन दवाओं का छिड़काव प्रत्येक 15 दिन पर करना चाहिए। नोटिक्स स्क्रब छोटे पशुओं के लिए अच्छा है तथा पेस्टोबाँन नामक आयुर्वेदिक दवा 30–40 गुना पानी में मिलाने के बाद वाह्य कृमि नाशन हेतु प्रयोग की जा सकती है।

❑❑❑

18 एक कोशीय परजीवी रोग

प्रकृति में पाये जाने वाले अनेक प्रकार के जीवों में कुछ एक कोशीय जीव होते हैं। ये जीव भी जीवाणु एवं विषाणु की तरह जब स्वस्थ पशु के किसी ऊतक में प्रवेश करते हैं तभी सक्रिय होकर रोग करते हैं। यद्यपि अनेक एक कोशीय जीव रोग करते हैं परन्तु चार जीव, जो रक्त में पाये जाते हैं तथा एक जो आंतों में पाया जाता है, का वर्णन यहाँ उचित होगा।

1. तिल्ली रोग (एनाप्लाजमोसिस): यह गाय, भेड़ तथा बकरी में एनाप्लाज्मा द्वारा होने वाला एक रक्त कोशीय परजीवी रोग है। यह पिस्सुओं के काटने से फैलता है। गाय की भारतीय प्रजातियाँ इसकी संवाहक (Carrier) हैं। यह विदेशी तथा संकर प्रजातियों में अधिक होता है। निरन्तर ज्वर, रक्तहीनता, पीलिया तथा लाल रक्त कोशिकाओं की कमी/पूरे रोगकाल में परजीवी का रक्त कोशिकाओं में उपस्थित रहना इस रोग के लक्षण हैं। इस रोग के निदान हेतु लक्षण को आधार बनाते हैं एवं पुष्टिकरण हेतु रक्त में परजीवी की पहचान करते हैं। उपचार हेतु टेरामाइसिन 10 मि.ग्रा./कि.ग्रा. शरीर भार की दर से 5–7 दिन के लिए अंतःपेशीय विधि से लगाते है। रोग के सहायक उपचार में पौष्टिक आहार में अतिरिक्त बेलामिल या लिवोजन का 5–10 मिली0 इन्जेक्सन अन्तःपेशीय विधि से सप्ताह में दो बार लगाते हैं। इम्फेरॉन 10 मिली0 अन्तःपेशीय विधि से सप्ताह में दो बार लगाते हैं। रोग से बचाव हेतु पिस्सुओं का नियंत्रण अति आवश्यक है।

2. रक्तिम मूत्र रोग (बबेशियोसिस): यह गाय–भैसों, घोड़े तथा कुत्तों में पिस्सुओं द्वारा फैलने वाला रोग है। इस रोग के लक्षण हैं; तेज बुखार, कॉफी के रंग का मूत्र, रक्तहीनता तथा कभी–कभी पीलिया का होना। इस रोग का निदान भी लक्षणों के अतिरिक्त रक्त में परजीवी देखकर करते हैं। उपचार हेतु गाय–भैसों तथा घोड़े में ट्रिपन ब्लू (1 प्रतिशत घोल), 80–100 मि.ली. धीरे–धीरे अन्तःशिरीय विधि से लगाते हैं या बेरेनिल की 1.6 ग्राम प्रति कि.ग्रा. शरीर भार की दर से अन्तःपेशीय विधि से लगाते हैं और कुत्तों के लिए 3–4 मि.ली. प्रति कि.ग्रा. अन्तःपेशीय विधि से लगाते हैं। सहायक उपचार में रक्तवर्धक टॉनिक, विटामिन तथा आवश्यकता पड़ने पर रक्त अंतःशिरा विधि से लगाते हैं।

3. थिलेरिएसिसः यह विदेशी एवं संकर प्रजातियों के पशुओं का महत्वपूर्ण रोग है। यह रक्त कोशिकाओं में पाये जाने वाले परजीवी के कारण होता है। इस रोग के कारक थिलेरिया, पिस्सुओं द्वारा फैलते है। ये देशी गाय में संक्रमण के स्रोत के रूप में रहते हैं। इस रोग के लक्षणों में निरन्तर तेज ज्वर, अत्यधिक भूख, सतह पर स्थित लिम्फ ग्रन्थियों की सूजन, रक्तहीनता तथा रक्तिम आँखें हैं। निदान हेतु ज्वर की अवधि में रक्त का परीक्षण करें। हिमोग्लोबिन के स्तर में गिरावट भी निदान में सहायता करता है। इस रोग के उपचार हेतु टेरामाइसिन का इन्जेक्सन 5–10 मि.ग्रा. प्रति कि.ग्रा. शरीर भार की दर से 6 दिन के लिए देते हैं। क्लोरोक्विन फॉस्फेट 8 मि.ग्रा. प्रति कि.ग्रा. शरीर भार अन्तःशिरा या क्वीनीन हाइड्रोक्लोर 30 मि.ली. दिन में एक बार, चार दिन के लिए टेरामाइसिन के साथ दे सकते हैं। रोग से बचाव हेतु पिस्सुओं का नियंत्रण करना चाहिए। कुछ देशों में टीका उपयोग में है। एक सेल कल्चर टीका राष्ट्रीय डेरी विकास बोर्ड द्वारा भारत में बनाया गया है तथा सफलतापूर्वक उपयोग किया गया है। यह टीका संकर नस्ल के 6 माह के बछियों में लगाया जाता है।

4. सर्रा (ट्रिपेनोजोमियेसिस): यह रोग ट्रिपेनोसोमा इवेनसाइ द्वारा होता है जो कि रक्त कोशिकाओं के बीच पाया जाता है। यह काटने वाली मक्खी की अधिकता के कारण होता है। यह रोग अधिक वर्षा तथा जंगल वाले क्षेत्रों में अधिक होता है। इस रोग में तेज ज्वर, कमजोरी, रक्तहीनता, आँखों से रक्तस्राव तथा वृषण में सूजन आ जाती है। गाय में तेज ज्वर, तन्त्रिका तंत्र सम्बन्धी लक्षण जैसे अनियमित इधर–उधर घूमना, सिर किसी ठोस आधार पर दबाना आदि भी इस रोग में पाया जाता है। निदान लक्षणों के अतिरिक्त रक्त परीक्षण द्वारा होता है। उपचार द्वारा सुधार ही इसके सही निदान का पुष्टिकरण करता है। यदि परजीवी रक्त से स्पष्ट न हो सके तो इसके निदान हेतु बिना किसी समस्या के पुष्टिकरण के लिए अस्वस्थ पशु का रक्त चूहे में लगाकर करते हैं। ऐसे चूहे यदि 72 घंटे के भीतर मर जाते हैं तथा इसके रक्त में परजीवी सूक्ष्मदर्शी परीक्षण में स्पष्ट दिखाई देते हैं तो वह सर्रा प्रभावित पशु होगा। इस रोग में उपचार हेतु घोड़ा तथा गाय में एंट्रीपॉल को 30 मिली0 आसुत जल में 30 ग्राम अन्तःशिरीय विधि से लगाते हैं तथा घोड़े में आठवें तथा पन्द्रहवें दिन पर आधी खुराक दोहरायें तथा गाय में चौदहवें दिन पर आधी खुराक दोहरायें। क्वीनापाइरामीन सल्फेट तथा क्लोराइड का संसर्ग उपचार तथा रोगहरन दोनों के लिए बहुत उपयोगी पाया गया है। सल्फेट शीघ्र घुल जाता है तथा उपचार में सहायक है। क्लोराइड कम घुलशील है तथा रोगहरन में सहायक है। उपरोक्त

संसर्ग एन्ट्रीसाइड (प्रोसाल्ट) ट्राईबेक्सिन, रिवैंसाई, ट्रिपनिल तथा कोरीडान के नाम से उपलब्ध है।

उपरोक्त दवायें चूरन के रूप में आती है तथा इन्हें आसुतजल में घोलकर अधोत्वचीय इंजैक्सन द्वारा लगाते हैं। वयस्क गाय भैसों के लिए औसत खुराक 15 मिली0 आसुत जल में 2.0–2.5 ग्राम चूरन है। रोग के बचाव हेतु इसे 3–4 माह उपरान्त दोहरायें। बेरेनिल नामक दवा ट्रिपेनोसोमोसिस तथा बबेशियोसिस दोनों के उपचार में सहायक है। बेरेनिल की खुराक 0.8 से 1.6 ग्राम प्रति 100 कि.ग्रा. अन्तःपेशीय एकमात्र खुराक दें। 48 घण्टे से पूर्व बेरेनिल पुनः नहीं उपयोग करना चाहिए। सभी स्थितियों में 25 प्रतिशत डैक्सट्रोज घोल सहायक उपचार के रूप में दें क्योंकि टिपेनोजोमा के कारण रक्त में ग्लूकोज का स्तर बहुत कम हो जाता है। यदि समूह में एक भी पशु इस रोग से ग्रस्त है तो यह आवश्यक है कि सभी पशुओं का रक्त परीक्षण करें। बाड़े से काटने वाली मक्खियों का नियंत्रण करें। उपचार के लिए बेरिनिल अत्यधिक प्रभावशील पायी गयी है।

5. काक्सीडियोसिस

यह आइमेरिया जाति द्वारा होता है। प्रमुखतः यह 6 माह से कम आयु के बछड़ों में स्पर्श से फैलने वाला आन्त्रशोध है जिसके लक्षण हैं आकस्मिक गम्भीर दस्त, श्लेष तथा रक्तयुक्त मल, शरीर में पानी की कमी, रक्तहीनता तथा कमजोरी इसके निदान हेतु मल परीक्षण करते हैं जिससे परजीवी के गोल व सूक्ष्म ऊवोसिस्ट दिखाई देते हैं। उपचार हेतु सल्फामीथाजीन की 5 ग्राम गोली 40 कि.ग्रा. शरीर के लिए 3 दिन तक खिलाते हैं। एम्प्रोलसोल 20 प्रतिशत, 50–100 मि.ग्रा. प्रति कि.ग्रा. प्रतिदिन पानी में मिलाकर 4–5 दिन तक दे सकते हैं या नेफ्टिन 100 मि.ग्रा. गोली 1–2 गोली प्रतिदिन 3–5 दिन के लिए देते हैं। आवश्यकता पड़ने पर 5 प्रतिशत डेक्ट्रोज, विटामिन आदि भी देते हैं।

❑❑❑

19 सामान्य विषाक्ततायें

विषाक्तता अधिकतर दुर्घटनावश होती है। इसके निदान के लिए विस्तृत पूछ–ताछ महत्वपूर्ण है। यदि विशिष्ट संक्रमण रोग, बिजली का झटका तथा साँप के काटने की संभावना न हो और पशु की अकस्मात् मृत्यु हुई हो तो पशु में विषाक्तता हो सकती है। विषाक्तता के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण है कि यदि विषाक्तता आहार सम्बन्धी हो तो बहुत से पशु विभिन्न स्तर तथा तीक्ष्णता के लक्षण देते हैं। किसी कीटाणुनाशक का स्प्रे, बाड़े की पुताई, कारखानों का पानी आदि के बारे में पूछताछ करें। यदि ऐसा हो तो उसी चीज की विषाक्तता होगी और उसी विषाक्तता का उपचार करना चाहिए। इसी प्रकार हो सकता है कि किसी विषैली दवा की अत्यधिक खुराक पशु को खिला दी गयी हो या पालतू पशुओं में त्वचा पर लगाने वाले किसी कीटनाशक का प्रयोग किया गया हो। इन बातों से रोग निदान में सहायता मिलती है। विषाक्तता में पशु को सामान्यतः बुखार नहीं होता (क्लोरिनेटेड हाइड्रोकार्बन को छोड़कर) पुतलियाँ अधिकतर फैल जाती है जिससे उनका फड़कना दुर्बल हो जाती है अथवा फड़कन नहीं होती, (आर्गेनोफॉस्फोरस को छोड़कर)। हृदय तथा श्वसनगति अनियमित हो जाती है। शरीर में पीड़ा, कम्पन, जबड़े चलाना, अफरा, मुंह में झाग, वमन तथा दस्त होते हैं। इन लक्षणों से विषाक्तता का निदान सहज हो जाता है।

उपचार हेतु सर्वप्रथम पशु से वह आहार या वस्तु अतिशीघ्र हटा देनी चाहिए, फिर बचे हुए विष को दूर करें। इसके लिए उल्टी तथा दस्त की दवा दें तथा पर्याप्त जल से त्वचा को धोयें। कुत्तों के लिए 5 मिली0 हाइड्रोजन पर–ऑक्साइड या थोड़े से पानी में 1 चम्मच नमक मिलाकर पिलायें। इससे वमन होता है। वमित पदार्थ विष परीक्षण के लिए प्रयोगशाला भेजा जा सकता है। बचे हुए विष का निष्क्रियकरण हेतु पशु को उचित मात्रा में टैनिक अम्ल, दूध, अण्डा आदि खिलाया जा सकता है। कैल्शियम अधिकतर स्थितियों में एंटीडोट के रूप में काम करता है, इसे पिला सकते हैं तथा अंतःशिरीय विधि से इन्जेक्सन के रूप में भी दे सकते हैं। क्रियाशील चारकोल पेट में विष को सोख लेता है, इसको 100 मिली0 पानी में दो चम्मच मिलाकर पेट नली (Stomach tube) द्वारा दें तथा इसके 1 घंटे उपरान्त 20 ग्राम सोडियम सल्फेट पिलाना चाहिए। गाय–भैसों में 1–3 ग्राम प्रति कि.ग्रा. शरीर भार की दर से चारकोल दें। यह हाइड्रोकार्बन, ऑर्गेनोफॉस्फोरस, माइकोटॉक्सिन तथा पौधों के एल्केलायड्स को निष्क्रिय

करता है। इसके 1 घंटे उपरान्त जल (सेलाइन) अथवा तैलीय पर्गेटिव देना चाहिए। इसके अतिरिक्त शरीर में पानी की कमी होने पर तरल, उत्तेजना में सिडेटिव तथा केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र अवसाद होने पर उत्तेजक देना चाहिए।

1. सीसा विषाक्तता: इससे सामान्यतः रोमन्थी पशु प्रभावित होते हैं जो ऑयल पेन्ट, लुब्रिकेन्ट आदि चाटने, फायर रेंज के चारागाह तथा सीसा धातु का सेवन करने के कारण होती है। इसके लक्षण हैं लड़खड़ाहट, पीड़ा, चिल्लाना, आक्षेप, फैली हुई पुतलियाँ, अंधापन, कब्ज तथा बाद में दस्त तथा तीव्र पेट दर्द। उपचार हेतु मैग्नीशियम सल्फेट खिलायें या कैल्शियम वर्सेनेट कुत्तों के लिए 25 मि.ग्रा. प्रति कि.ग्रा. शरीर भार की दर से अधोत्वचीय 4–5 दिन तक दोहरायें। उत्तेजना के नियंत्रण के लिए लार्जेक्टिल अथवा सिक्विल की उचित मात्रा देनी चाहिए।

2. आर्सेनिक विषाक्तता: यह परजीवी नियन्त्रण के लिए पशुओं को आर्सेनिक घोल में डुबाने अथवा स्प्रे करने, आर्सेनिकयुक्त खरपतवार, कीटनाशक तथा अत्यधिक मात्रा में आर्सेनिकयुक्त दवा आदि के धोखे से खा लेने के कारण होता है। इस रोग में पेट तथा आँतों का तीक्ष्ण शोथ होता है जिसके कारण तीव्र उदर दर्द तथा दाँत पीसने जैसे लक्षण आते हैं। वमन तथा दुर्गन्धित दस्त होते हैं। कुत्ते के वमन में अदरख जैसी गन्ध आती है। पशु पीला पड़ जाता है और नाड़ी दुर्बल हो जाती है। आवेगकारी प्रभाव के कारण मृत्यु भी हो सकती है। उपचार हेतु 15–30 ग्राम सोडियम थायो–सल्फेट 200 मिली0 पानी में अन्तः शिरीय विधि दें तथा इसके पश्चात् 30–30 ग्राम बाल (2, 3 डाइमरमैपटोप्रोपेनॉल) खिलायें।

3. हाइड्रोसाइनिक अम्ल विषाक्तता: यह रोमन्थी पशुओं में ज्वार खाने के कारण होती है। असमय वर्षा के बाद ज्वार के खेत में उगे, नये पौधों का सेवन इसका कारण है। यह लिनसीड तथा अन्य सायनाइड युक्त पौधों के खाने के कारण भी हो सकती है। इस रोग में 1–2 घंटे में मृत्यु हो जाती है। तीक्ष्ण श्वसन व्यथा, बेचैनी, अफरा, फैली हुई पुतलियाँ तथा श्लेष्म कला लाल हो जाती है। पेट के पदार्थों से कड़वे बादाम जैसी गन्ध आती है। उपचार हेतु सोडियम नाइट्राइट 3 ग्राम, सोडियम थायोसल्फेट 15 ग्राम तथा आसुत जल 200 मिली0 मिलाकर धीरे–धीरे अन्तःशिरीय विधि से देना चाहिए। इसके अतिरिक्त 30–60 ग्राम सोडियम थायोसल्फेट एक घंटे के अन्तर पर 4–5 बार खिलायें। कैल्शियम बोरोग्लूकोनेट, डेक्सट्रोज सेलाइन तथा एन्टीहिस्टामीन के इन्जेक्सन भी शीघ्र लाभ में सहायक है।

4. नाइट्रेट तथा नाइट्राइट विषाक्तता: यह विषाक्तता उन पौधों के सेवन के कारण होती है जिन्हें अत्यधिक नाइट्रेट खाद युक्त मिट्टी में उगाया

जाता है। यह दुर्घटनावश अमोनियम नाइट्रेट के सेवन के कारण भी हो सकती है। इस विषाक्तता में लार गिरना, उदर पीड़ा, मांसपेशियों में कम्पन, लड़खड़ाना, सामान्य से कम तापमान, तीव्र दस्त, खून गाढ़ा लाल या कॉफी की तरह भूरा हो जाता है। इसके उपचार हेतु इसका विशिष्ट एन्टीडोट मिथाइलीन ब्लू है। इसका 1 प्रतिशत घोल 20–40 मिली0 अन्तःशिरीय विधि से दें, यदि आवश्यक हो, तो दोहरायें।

5. स्ट्रिक्नीन विषाक्तताः यह चूहों को मारने के लिए एक सामान्य विष है। इसकी विषाक्तता कुत्तों में धोखे से खाने के कारण या मरा चूहा खाने के कारण होती है। यह गौ पशुओं में सामान्यतः नहीं होती है। इस रोग से प्रभावित पशु को श्वास में परेशानी, नीला पड़ जाना, कपकँपाना तथा श्वसन लकवा हो जाता है जिसके कारण पशु की मृत्यु हो जाती है। इसके उपचार हेतु एपोमॉरफीन–20 माइक्रोग्राम अन्तःशिरीय विधि द्वारा देते हैं तथा पेट खाली कर देते हैं। रोगी को अन्तः शिरीय विधि से पैन्टाबार्बीटॉल या इन्ट्रावल सोडियम को 20 मिली0 घोल में 0.5 ग्राम प्रति कि.ग्रा. शरीर भार के माप से देकर बेहोश कर दें। इसके उपरान्त पेट खाली करने का उपाय करें। कुत्तों में कैफीन, अफीम तथा कृत्रिम नारकोटिक का उपयोग न करें।

6. जिंक फॉस्फाइडः यह चूहों का एक सामान्य विष है तथा अधिकतर कुत्तों में मृत चूहा खाने से हो जाता है। इस रोग में वमन, दस्त, फेफड़ों में पानी भरना तथा शरीर में कंपन होता है। उपचार हेतु पोटेशियम परमैंगनेट के 1 : 2000 घोल द्वारा पेट साफ करें। यदि फेफड़ों में पानी न भरा हो तो ऑक्सीजन दें तथा डेक्सट्रोज अन्तःशिरीय विधि से दें। सोडियम बेन्जोएट भी 0.05 ग्राम अन्तःपेशीय विधि से दे सकते हैं।

7. आरगेनोफॉस्फोरस विषाक्तताः मैलाथिओन, सुमीथिओन, नेगुवान आदि सामान्यतः उपयोग किये जाने वाले कीटनाशक हैं। यह पशुओं के शरीर पर तथा बाड़ों में छिड़काव के लिए भी उपयोग होते हैं। इनका धोखे से खाना या चाटना ही विषाक्तता का कारण है। इस विषाक्तता में लार गिरना, दस्त, मांसपेशियों का अकड़ना, आँख की पुतली सिकुड़ना, सिर में कम्पन, अफारा तथा मृत्यु होना ही लक्षण है। उपचार हेतु एट्रोपीन सल्फेट 0.25 मि.ग्रा. प्रति कि.ग्रा. शरीर भार गाय में तथा 1 मि.ग्रा. प्रति कि.ग्रा. शरीर भार भेड़ के लिये प्रयोग करते हैं। गाय के लिए औसत कुल खुराक 50 मि.ग्रा. है। आधी खुराक धीरे–धीरे अन्तःशिरीय तथा आधी अन्तःपेशीय विधि से दें। इसे 4–5 घंटे के अन्तर पर दोहरायें। कुत्तों में 0.05 मि.ग्रा. प्रति कि.ग्रा. शरीर भार एट्रोपीन सल्फेट अन्तःशिरीय दें तथा अधोत्वचीय मार्ग से यदि आवश्यक हो तो दोहरायें। कुत्तों में ही कैल्शियम 5–10 मिली0 अन्तःशिरीय विधि से भी दे सकते हैं। यदि अत्यधिक उत्तेजना हो तो बार्बीचुरेट दें।

8. क्लोरिनेटिड हाइड्रोकार्बन विषाक्तता: डी.डी.टी., गैमेक्सीन (बी.एच.सी.), एल्ड्रिन एवं इन्ड्रिन आदि कीटनाशक के रूप में उपयोग किये जाते हैं तथा त्वचा द्वारा अथवा छिड़काव की गयी घास के सेवन द्वारा पशु के शरीर में प्रवेश करते हैं और विषाक्तता का कारण बनते हैं। केन्द्रीय तन्त्रिका तंत्र की उत्तेजना, मांसपेशियों में कंपन, दाँत किटकिटाना, दस्त तथा बुखार इस विषाक्तता के लक्षण हैं। उपचार हेतु त्वचा को अच्छी तरह साबुन के पानी से साफ कर लें, यदि पशु के द्वारा खाने की सम्भावना हो तो उसे उल्टी करायें। अन्तःशिरीय विधि से पेन्टोबार्बीटॉल दें। गाय में 200 मिली0 कार्बोराल देना चाहिए। कैल्शियम 5–10 मिली0 अन्तःशिरीय विधि से कुत्तों में दे सकते हैं। ठंडे पानी द्वारा शरीर के तापमान को कम करें, इससे भी लाभ मिलता है।

9. यूरिया विषाक्तता: यह कृषकों द्वारा उपयोग किये जाने वाली सामान्यतया खाद है। दुर्घटनावश पशु इसका सेवन कर लेते हैं। पशु के आहार में यूरिया को प्रोटीन के सस्ते स्रोत के रूप में भी मिलाया जाता है। यदि इसे प्रोटीन के रूप में देना हो तो 0.5 से शुरू करते हुए अधिकतम 2 प्रतिशत के माप से सूखे भूसे में मिलाकर देना चाहिए। इसके साथ कार्बोहाइड्रेट जैसे मक्का, शीरा आदि पर्याप्त मात्रा में देना चाहिए। दुर्घटनावश अधिक खुराक विषाक्तता का कारण बन सकती है। औसत आकार की भैस–गाय के लिए 100 ग्राम यूरिया भी विषैली है। यूरिया विषाक्तता के लक्षण हैं–पेट में तीक्ष्ण पीड़ा, कंपन, अफारा और तीव्र चिंगाड़ना। पशु की 3–4 घंटे में मृत्यु हो सकती है। मृत्यु के बाद पशु के नाक–मुंह से अत्यधिक पानी का श्राव होता है। पशु के श्वांस में अमोनिया की तेज गंध आती है तथा उसकी मृत्यु श्वांस रूक जाने के कारण होती है। इस रोग का उपचार सफल नहीं है। कमजोर अम्ल जैसे एसीटिक एसिड 3–4 लीटर शुरू की अवस्था में सहायक हो सकता है। रूमेनोटॉमी द्वारा रूमेन को खाली करके बड़ी मात्रा में अन्तःशिरीय डेक्सट्रोज सेलाइन भी पशु को मृत्यु से बचा सकता है।

10. फ्लोरीन विषाक्तता (फ्लोरोसिस): यह पानी अथवा आहार में लगातार फ्लोरीन का सेवन होने के कारण होने वाली विषाक्तता है। कुछ क्षेत्रों की मिट्टी तथा पानी में फ्लोरीन की मात्रा अत्यधिक है। इसके अतिरिक्त कारखानों से आने वाला गन्दा पानी, जिसमें फ्लोरीन की मात्रा अधिक होती है या खनिज के रूप में दिया जाने वाला रॉक फॉस्फेट, जिसमें भी फ्लोरीन अत्यधिक मात्रा में पाया जाता है, भी विषाक्तता के श्रोत हो सकते हैं। फ्लोरीन हड्डियों तथा दांतों में जमा होता है। यह कोशिकाओं में पाये जाने वाले कैल्शियम को कैल्शियम फ्लोराइड के रूप में बाँध देता

है। इसके कारण रूमेन की सूक्ष्म जीवों पर प्रभाव पड़ता है तथा पशु को दीर्घस्थायी अपच हो जाता है। इंसाईजर दांतों पर धब्बे हो जाते हैं। दाँत कमजोर हो जाते हैं तथा उनमें पीड़ा होती है। पशु ओस्टियोफ्लोरोसिस के कारण लंगड़ाता है। उसके हड्डी तथा जोड़ बढ़ जाते हैं, उनमें पीड़ा होती है तथा आसानी से टूट जाते हैं। इस रोग के निदान हेतु रक्त तथा मूत्र में फ्लोरीन के स्तर की जाँच करते हैं। मिट्टी तथा पानी का भी फ्लोरीन का परीक्षण करना चाहिए। उपचार हेतु यदि फ्लोरीन की अधिक मात्रा से पशु प्रभावित है तो उपचार सम्भव नहीं है। फ्लोरीन की मात्रा कम करने हेतु कैल्शियम तथा ग्लूकोज ही उचित उपचार है। 30 ग्राम अमोनियम सल्फेट प्रतिदिन फ्लोरीन के विषैले प्रभावों को कम करने के लिए दे सकते हैं। बचाव हेतु पानी में 500–1000 मि.ग्रा. प्रति कि.ग्रा. की दर से चूना मिलाकर देना चाहिए।

11. ऑक्जेलेट विषाक्तताः यह पोटेशियम ऑक्जेलेट के रूप में कुछ पौधों तथा घास में उपस्थित होता है। कुछ कवक जैसे एस्परजिलस नाइगर (काली फंगस) ऑक्जेलेट बनाती है तथा भण्डार में रखे गये चारे में इस कवक के लग जाने के कारण एवं ऐसे चारे के निरन्तर सेवन के कारण विषाक्तता हो जाती है। अकस्मात् अधिक मात्रा में सेवन के कारण गाय में तीव्र विषाक्तता हो जाती है। ऑक्जेलेट के कारण पेट तथा आँतो में संताप होता है। पेट में ऑक्जेलेट कैल्शियम के साथ मिलकर कैल्शियम ऑक्जेलेट बनाता है जो कि घुलनशील नहीं है। ऑक्जेलेट रक्त में कैल्शियम को बाँधकर कैल्शियम की कमी उत्पन्न करते हैं। जिससे इसका प्रभाव इसीलिये रक्त में कैल्शियम की अत्यधिक कमी के समान होता है। घुलनशील ऑक्जेलेट के निरन्तर सेवन के कारण गुर्दे की नलियों मे क्रिस्टल जमा हो जाते हैं जिससे रक्त धमनियों में चोट पहुँचती है एवं उनमें सूजन हो जाती है। इस रोग में माँसपेशियों में कंपन, लड़खड़ाना, पशु का लेट जाना तथा बेहोशी होती है। इसके अतिरिक्त रूमन में गतिहीनता, अफारा, चाल में लड़खड़ाहट, मूत्र में रक्त, जननांगों तथा उनके आसपास सूजन हो जाती है। रोग का पुष्टिकरण पशु को दिये जाने वाले चारे तथा घास में ऑक्जेलेट के स्तर की जाँच करके करते हैं। उपचार हेतु कैल्शियम बोरोग्लूकोनेट 25% घोल अन्तःशिरीय 200–300 मिली0 या कैल्शियम लेवुलिनेट 30 मिली0 अन्तःपेशीय विधि से देते हैं। आहार के साथ चूने का पानी तथा ऊर्जा के लिए डेक्सट्रोज घोल देना चाहिए। फफूंद लगे चारे को या तो फेंक दें या यदि खिलाना आवश्यक हो तो धूप में सुखाए तथा पशु को खिलाने से पूर्व उसमें चूने का पानी मिलायें। इससे रोग का बचाव हो सकता है।

12. एफ्लाटॉक्सीकोसिसः यह *एस्परजिलस फ्लेवस* नाम की फफूंद के विष से होने वाली विषाक्तता है। इस फफूंद के विष को एफ्लाटॉक्सिन कहते हैं। यह फफूंद दानों, मूंगफली, मक्का, ज्वार आदि के भंडार में अधिक नमी के कारण उत्पन्न हो सकती है। तीव्र विषाक्तता के कारण बछड़ों में मृत्यु हो सकती है। यदि कम मात्रा में ऐसा चारा लम्बे समय तक खिलाया जाए तो लक्षण धीरे–धीरे उत्पन्न होते हैं। पशु को दीर्घ स्थायी अपच होती है तथा मानसिक लक्षण जैसे लड़खड़ाहट, अन्धापन, दांत पीसना तथा दस्त हो जाते हैं। पशु की त्वचा पर काले 0.5 से.मी. के गोल चकत्ते पड़ जाते हैं। खुर व त्वचा के जोड़ पर सूजन आ जाती है। योनि तथा अयन की त्वचा का रंग हल्का हो जाता है। दुग्ध उत्पादन कम हो जाता है। निदान हेतु चारों में एफ्लाटॉक्सिन का परीक्षण करें। 100 माइक्रो ग्राम प्रति कि.ग्रा. चारे से अधिक का स्तर गाय के लिए विषैला है। इस रोग का उपचार विशिष्ट नहीं है। अपच की स्थिति में पेट खाली करें। अन्तःशिरीय विधि से डेक्सट्रोज, कैल्शियम तथा यकृत टॉनिक सहायक हैं। चारे का उचित परिरक्षण करना चाहिए जिससे रोग से बचाव हो सके।

13. साँप का काटनाः सांप काटने का लक्षण सांप की जाति तथा प्रकार पर निर्भर करता है। निदान हेतु पशु के पैरों, सिर तथा मुंह पर सांप काटने के निशान देखें। स्थानीय सूजन तथा पीड़ा, उत्तेजना, लार गिरना, शरीर का नीला पड़ना प्रारम्भिक उत्तेजना तथा लकवा इसके लक्षण हैं। श्वांस घुटने के कारण कुत्तों में 1–10 घंटे तथा गाय व घोड़े में 48 घंटे में मृत्यु हो जाती है। उपचार हेतु काटे हुए स्थान को कस कर बाँध दें। उस स्थान पर एक गहरा चीरा लगायें तथा कुछ समय तक रक्त बहने दें। हाफ्किन इंस्टीट्यूट इसका प्रतिविष बनाता है जिसे पहले 2 एम्प्यूल अन्तःशिरीय विधि से दें तथा पशु के ठीक होने तक प्रत्येक चार घंटे पर दोहरायें।

❑❑❑

20 आपातकालीन रोग

आपातकालीन समस्याए व दुर्घटनाएं पशुओं के साथ भी होती हैं। ऐसे हालात में उनकी सहायता आसपास उपलब्ध साधनों, देशी दवाओं से करना व चिकित्सक के आने या चिकित्सालय पहुँचने तक उनको सम्भालना ही आकस्मिक चिकित्सा कहलाता है। सर्वप्रथम जैसे ही पता चले कि कोई पशु बीमार है तो उसे स्वस्थ पशुओं से अलग कर दूर बाँध देना चाहिए। ऐसे बीमार पशु को हवादार, शान्त एवं साफ जगह पर रखना चाहिए और शीघ्र घरेलू उपचार देना चाहिए। आकस्मिक चिकित्सा पद्धति वह है जो किसी रोग की विस्तृत चिकित्सा के पूर्व किया जाए। इससे पशु कभी–कभी स्वस्थ भी हो जाता है व बीमारी विकराल रूप धारण नहीं कर पाती है तथा तब तक चिकित्सक को बुलाने का समय भी मिल जाता है और उन्हें भी पशु के उपचार में आसानी हो जाती है। पशुओं में होने वाली कुछ बीमारियाँ व आकस्मिक आपातकालीन अवस्थायें निम्नलिखित हैः

1. थनों का जख्मः थन में कई तरह के जख्म हो सकते हैं जो बछड़ें के दाँत से लग सकते हैं। इसके अलावा पैर पड़ जाने से, मक्खी के काटने से, किसी नुकीली वस्तु से या बैठने की जगह ऊबड़–खाबड़ या पथरीली होने पर भी थन में चोट लग जाती है। कई बार जख्म गहरे लग जाते हैं। साधारण जख्म को गर्म कर ठंडे किये हुए पानी से साफ कर लेना चाहिए व उसके ऊपर एन्टीसेप्टिक क्रीम का लेप करना चाहिए। किन्तु जब जख्म गहरे होते हैं तो प्रायः पहले कई दिन तक उनसे खून का बहाव होता है या फिर छूने पर रक्त बह निकलता है। ऐसे घाव के इलाज के लिए आवश्यक हेाता है कि पहले उनका ठीक से निरीक्षण किया जाए। यदि कोई रक्त नलिका कटी हुई हो तथा उससे रक्त का बहाव हो रहा हो तो उसे चिकित्सक को बुलाकर दिखाना चाहिए ताकि उसे बाँधा जा सके। उसके बाद घाव यदि गहरा हो तो उसमें टाके भी लगवाने पड़ सकते हैं। कई बार थन फट जाता है तथा उससे दूध का रिसाव होने लगता है। इस तरह की समस्या को केवल चिकित्सक द्वारा ही ठीक करवाना चाहिए क्योंकि कोई भी दूसरा इलाज व्यर्थ होगा। इसके अतिरिक्त कभी–कभी दूध निकलने का रास्ता थन के अन्त में चोट लगने से बन्द हो सकता है

और उसके अन्दर दूध निकालने के पश्चात् लौंग देने से दूध आसानी से निकल जाता है। फिर भी यदि 2–3 दिन में यह दशा न सुधर पाए तो उसे कुशल चिकित्सक को दिखलाना चाहिए।

2. बेहोशी : विशेष परिस्थितियों में पशु अचानक बेहोश हो जाते है। जैसे सिर में चोट लगना, पानी में डूबना, धुएं में दम घुटना, विद्युत करेन्ट का झटका लगना, हृदय गति अवरूद्ध होना आदि। अधिकतर स्थितियों में कृत्रिम श्वसन देना लाभकारी होता है। सिर में चोट लगने पर ठंडे पानी की पट्टियाँ सिर पर रखते हैं। विद्युत करेन्ट लगने पर छाती की मालिश करना व पशु को गर्म रखना चाहिए। कृत्रिम श्वसन देना चाहिए व हृदय की मालिश करनी चाहिए। यदि पशु कुछ समय उपरान्त पानी पीने की स्थिति में है तो उसे नमक व गुड़ मिलाकर पिलाना अत्यन्त लाभदायक होता है। बेहोश हुए पशु को बाद में कुशल चिकित्सक को अवश्य दिखाना चाहिए।

3. 'लू' लगना : गर्मी के दिनों में गर्म हवा की चपेट में आ जाने से पशु को 'लू' लग जाती है, इसमें शरीर के तापक्रम को नियंत्रण करना आवश्यक है। ऐसे पशु को ठंडे स्थान पर रखा जाना चाहिए। ठंडा करने के लिए बर्फ या ठंडा पानी शरीर पर विशेष रूप से सिर पर डालना चाहिए। पशु को ठंडे पानी में तैयार किया हुआ चीनी का घोल भुने हुए जौ का आटा व थोड़ा नमक बराबर पिलाते रहना चाहिए। पशु को पुदीना व प्याज का अर्क बनाकर देना चाहिए, जो अतिलाभदाय है। यदि इससे पशु ठीक न हो पाए तो चिकित्सक की सहायता लेनी चाहिए।

4. ठंड लगना : जाड़े के दिनों में प्रायः कम उम्र के पशुओं व कमजोर गायों को ठंड लग जाती है। इसमें नाक, आँख से पानी आना, भूख कम हो जाना, शरीर के रोयें खड़े रहना, पशु का काँपना आदि लक्षण प्रमुख हैं। छोड़ देने पर पशु खाँसता है, श्वांस गति तेज रहती है व ज्वर भी हो जाता है। ध्यान न देने पर पशु को निमोनिया हो जाता है। अतः आवश्यक है कि पशु का मौसम बदलते ही ध्यान दिया जाए। इसके लिए गुड़ व गुनगुना पानी बार–बार देना फायदेमन्द है। आजवाइन, सेंधा नमक व अदरक की 10–10 ग्राम मात्रा का घोल 50 ग्राम गुड़ में बनाकर पशु को दिन में दो बार देना अत्यन्त लाभदायक है। 100 मि.ली. तारपीन या 100 मि.ली. सरसों के तेल में 10 ग्राम कपूर डालकर पशु की मालिश करनी चाहिए व चिकित्सक को बुला लेना चाहिए।

5- ikxy dqRrs dk dkVuk % कुत्ते के काटे हुए स्थान को कार्बोलिक साबुन

से कई बार धोना चाहिए। पशु को बाकी पशुओं से अलग कर बाड़े में बन्द कर देना चाहिए। चिकित्सक से मिलकर 0, 3, 7, 14, 28 व 90 दिन पर टीके की व्यवस्था करनी चाहिए। इस कार्य में विलम्ब करने पर पशु की जान जाने के अलावा उसके साथ रहे मनुष्य भी चपेट में आ जाते हैं। अतः अति सावधानीपूर्वक इस मामले को देखा जाना चाहिए।

6. साँप का काटना : पशु शरीर में प्रायः पैरों पर ही सर्प दंश होता है। जिस भाग पर साँप ने काटा हो उसके 2–3 इंच ऊपर पतली डोरी से कसकर बाँध देना चाहिए। साँप के काटे हुए स्थान पर नए ब्लेड से चीरा लगाकर खून के साथ–साथ विष निकाल देना चाहिए। चिकित्सक से सर्प विष प्रतिरोधी दवा लगवानी चाहिए।

7. नाभी का हार्निया: यह छोटे बछड़ों में ही होती है। नाभी की जगह फूली हुई रहती है जो अंगुलियों से दबाने पर अन्दर चली जाती है। इसके ऊपर एक सिक्का रखकर मोटा कपड़ा लगाकर पीठ पर बाँध देना चाहिए। बछड़ों में कई बार ऐसा करने पर यह अवस्था ठीक हो जाती है। यदि ऐसा दो सप्ताह में न हो तो चिकित्सक से सलाह लेनी चाहिए।

8. पेशाब की नली व थैली में पथरी होना : यह प्रायः बैलों में मुख्य रूप से होती है। इसके कई कारण हैं। पथरी कई तरह के खनिजों की अधिकता से बनते हैं। यह पथरी पेशाब के रास्ते में कहीं भी बन सकती है जो कि बाद में बड़े आकार का होने पर मूत्र का रास्ता बन्द कर देती है। इससे पशु बेचैन हो जाता है। कई बार थोड़ा–थोड़ा पेशाब आता है, पशु पैर पेट पर मारता है और पेट की ओर बार–बार देखता है। नथूने सूखे रहते हैं। दो–तीन दिन बाद नाक से श्वांस छोड़ने पर विशेष प्रकार की गंध आती है। पशु दाना–पानी छोड़ देता है जिससे उसका शरीर तेजी से कमजोर हो जाता है। उपचार हेतु सिस्टोन पाउडर 25–50 ग्राम प्रतिदिन देना लाभदायक है जो पथरी को गलाने में सहायक है। 2 दिनों में यदि लाभ न मिले तो अविलम्ब चिकित्सक के द्वारा आपरेशन ही एक मात्र उपाय है।

9. आँत रूकना : पशु के आँत में रूकावट कई कारणों से हो सकती है जैसे, आपस में उलझ जाने से, उनमें गाँठ पड़ जाने से, पॉलीथीन खाने से, छोटे पशुओं के पेट में कीड़े यदि बहुत ज्यादा हो जाएं तो भी रूकावट आ सकती है। इस हालत में पशु गोबर नहीं करता है। खाना–पीना बहुत कम लेता है या बन्द कर देता है। पेट फूल जाता है। गोबर यदि शुरू–शुरू के दिनों में होता भी है तो सूखा हुआ निकलता है। पशु बार–बार पेट की

तरफ देखता है और बेचैन रहता है। शारीरिक दशा तेजी से गिरने लगती है। गोबर के रास्ते में खून भी निकलता है। इस हालात के इलाज के लिए पशु चिकित्सक की जल्द सहायता लेना चाहिए।

10. गले में अटकन : कई बार पशु बड़े आकार के खाद्य जैसे आलू निगल लेते हैं। आकार में बड़ा होने के कारण यह नीचे खाद्य नली को पार नहीं कर पाता और अटक जाता है। ऐसी हालात में पशु के मुँह से लार टपकता रहता है। प्रायः कुछ निगलने की कोशिश का लक्षण दिखाता है। पशु बेचैन रहता है व उसका पेट भी फूल जाता है। पशु कभी–कभी पानी भी नहीं पी पाता व पिया हुआ पानी नाक से बाहर आ जाता है। ऐसे पशु के गले पर बाहर से हाथ फेर कर रूकावट की जगह का पता करना चाहिए। जब पता लग जाए तो उसे दबाकर तोड़ने की कोशिश करनी चाहिए, जो प्रायः टूट जाती है। यदि न टूटें तो चिकित्सक को बुलाना ही उचित होगा।

11. जलना : सबसे पहले आग बुझानी चाहिए। जले हुये स्थान पर पानी डाल लेना चाहिए, बाद में जैतून व नारियल का तेल का लेप करना चाहिए। जले हुए भाग पर चूने का पानी एवं अलसी का तेल बराबर भाग में मिलाकर लगाना चाहिए जो कि अति लाभदायक है। धावों को सड़ने से बचाना चाहिए एवं चिकित्सक को सूचित करना चाहिए।

12. रक्त श्राव : रक्त को रोकने का प्रमुख सिद्धान्त है कि कटी हुई नली पर दबाव देना। इस स्थान से 2–3 से.मी. ऊपर व नीचे कसकर बाँध देना चाहिए। कई बार कटे हुए स्थान पर बाँधना सम्भव नहीं हो पाता हैं, ऐसी स्थिति में कटे हुए स्थान पर तह कर मोटा किए हुए कपड़े को फिटकरी के घोल से भिगोकर जोर से दबाकर रखना चाहिए। रक्तश्राव वाले स्थान पर बर्फ या ठंडे पानी को भी लगातार डालकर खून का बहना रोका जा सकता है। यदि खून की नली कट गयी हो तो चिकित्सक को दिखलाना आवश्यक होता है। शरीर से जितना कम खून बर्बाद हो सके उतना ही अच्छा है, क्योंकि रक्त ही जीवन है।

❑❑❑

21 शिशु पशु रोग

सफल पशुपालन एवं अधिक उत्पादन हेतु शिशु पशुओं का स्वस्थ रहना एवं उनकी मृत्युदर कम करना अत्यधिक आवश्यक है। शिशु पशुओं में 6 महीने की उम्र तक मृत्यु अधिक होती है क्योंकि इस उम्र तक उसमें रोग प्रतिरोधक क्षमता पूर्णतया विकसित नहीं होती है। अतः अनेक प्रकार के रोग होने की संभावना बनी रहती है। यही कारण है कि शिशु पशु को रोग से बचाने के उपाय करने चाहिए। प्रायः शिशुओं में रोग आसपास की गन्दगी, गन्दा पानी चाटना, छोटी जगह में अनेक शिशु रखना तथा शिशु को उनकी माता का दूध पर्याप्त मात्रा में न पिलाने के कारण होते हैं। शिशु पशुओं के प्रमुख रोग निम्नवत् हैः

1. न्यूमोनिया : जब ठण्ड के दिनों में अधिक मात्रा में शिशु छोटे स्थान पर रखे गये हो तो उनमें न्यूमोनिया जैसे रोग की सम्भावना बढ़ जाती है। यह मुख्यतया जीवाणु, विषाणु व परजीवी से होती है इससे बछड़ों में मृत्युदर 50 प्रतिशत तक होती है। इस रोग में जानवर के शरीर का ताप बढ़ जाता है, श्वांस गति बढ़ जाती है, बार–बार खाँसी आती है, श्वांस लेने में परेशानी होती है। नासाछिद्रों से पानी बहने लगता है। आला (स्टेथोस्कोप) लगाने से फेफड़ों से पानी भरने की ध्वनि सुनाई देती है जिससे इस बीमारी का निदान किया जा सकता है। उपचार हेतु पशु चिकित्सक की देखरेख में प्रतिजैविक औषधि शरीर के ताप को कम कर देती है और रोग को ठीक कर देती है।

2. परजीवी रोग : छोटे शिशुओं की मिट्टी या गन्दी चीज खाने की आदत होती है जिससे उनमें यह रोग अधिक होता है। भैंस के शिशु में यह परजीवी गर्भ के समय ही भैंस के द्वारा शिशु में आ जाते हैं। यह रोग छोटे शिशुओं में मृत्यु कर सकता है। यह परजीवी आँतों में आमाशय की भित्ति से चिपक कर भोजन शोषित करते हैं जिसमें जानवर कमजोर हो जाता है। खून की कमी हो जाती है। कभी–कभी ये परजीवी जिगर में पित्त नली में घुसकर रूकावट पैदा करते हैं। बीमार जानवर के गोबर को सूक्ष्मदर्शी से देखने पर परजीवी के अंडे दिखते हैं, जो रोग का निदान करने में सहायक सिद्ध होते हैं। अण्डे पाये जाने पर एलबेन्डाजोल नामक औषधि देनी चाहिए।

3. दस्त : यह बछड़ों की एक प्रमुख बीमारी है तथा इसका प्रभाव एक माह से कम उम्र के बछड़ों में ज्यादा होता है। इससे 10–80 प्रतिशत तक मृत्युदर हो सकती है। जो बछड़े बच जाते हैं, उनमें वृद्धि की दर कम हो जाती है और वे कमजोर रह जाते हैं। इस बीमारी में बछड़ों को पतले सफेद व दुर्गन्धयुक्त दस्त लग जाते हैं। जानवर कमजोर होने लगता है तथा उसे

भूख कम लगती है। मुख्यतया विषाणु एवं जीवाणु से यह बीमारी होता है जो कि आँतों में क्षति पहुँचाता है। इस रोग में चिकित्सक के परामर्श के अनुसार सल्फा औषधि उपयोगी होती है।

4. डिप्थीरिया : यह रोग मुख्यतया छः सप्ताह से कम उम्र के बछड़ों में एक जीवाणु के कारण होता है। इसमें मुँह तथा गले में मटमैले रंग के धब्बे लग जाते हैं। जीभ सूज जाती है। मुँह से पानी गिरने लगता है जिससे जानवरों को खाने–पीने में कठिनाई होती है। इसके अलावा साँस लेने में भी कठिनाई होने लगती है। भूख मर जाती है। जानवर सुस्त हो जाता है। इस रोग का निदान मुँह में मटमैले रंग के धब्बे देखकर तथा जीभ की सूजन देखकर किया जा सकता है। उपचार हेतु ज्वर कम करने की दवा के साथ प्रतिजैविक औषधि जैसे एम्पीसिलीन आदि देना होता है।

5. जोड़ों की सूजन : इस रोग में जानवर के जोड़ तथा नाभि सूज जाती हैं। मुख्यतया घुटने का जोड़ प्रभावित होता है इससे जानवर को चलने में कठिनाई होती है और उठने में दर्द महसूस होता है तथा जानवर धीरे–धीरे कमजोर होने लगता है। यह रोग न्यूमोनिया या ऐनसैफेलोमाइलाइटिस का कारण भी हो सकता है। प्रभावित पशु में शीघ्र ही जेन्टामाइसिन का टीका उचित मात्रा में लगाना चाहिए।

6. थिलेरियोसिस : यह रोग एक प्रकार के एक कोशीय परजीवी से होता है। ये परजीवी एक जानवर से दूसरे जानवर में किलनियों द्वारा फैलते हैं। ये परजीवी जानवरों की लसिका ग्रन्थियों में सूजन पैदा करते हैं। शरीर का तापमान बढ़ जाता है व साँस लेने में कठिनाई पैदा होती है। जानवर कमजोर हो जाता है और मर जाता है। उपचार हेतु टेरामाइसिन की उचित मात्रा सात दिन तक लगानी चाहिए एवं बचाव हेतु रक्षा वो–वैक का टीका 3–6 माह की उम्र पर लगाना चाहिए।

7. एनसैफेलोमाइलाइटिस : यह रोग क्लेमाइडिया या कुछ अन्य जीवाणुओं जैसे हीमोफिल्स, ई0 कोलाई आदि से होता है। इससे शरीर का तापक्रम 105–107^0 फारेनहाइट तक बढ़ जाता है व भूख कम लगती है। इस बीमारी से बछड़ों में 30 प्रतिशत तक मृत्युदर हो सकती है जो बछड़े बच जाते हैं, उनमें वृद्धि दर कम हो जाती है। पशु चिकित्सक की सलाह से उचित मात्रा में प्रतिजैविक औषधि लगानी चाहिए।

8. क्षयरोग : यह रोग बछड़ों में हल्का बुखार अथवा खाँसी, कमजोरी, भूख न लगना आदि लक्षण उत्पन्न करता है। शव परीक्षा के दौरान फेफड़ो में गाँठे देखी जा सकती हैं। निदान हेतु ट्यूबरकुलिन का 0.1 मि.ली. टीका अन्तःत्वचीय विधि से लगाकर 48–72 घण्टे बाद टीका लगाये गये स्थान पर सूजन का निरीक्षण करते हैं तथा उपचार हेतु स्ट्रेप्टोमाइसिन, आइसोनेम्स, रैफेम्पेशीन आदि 6 माह तक खिलाते हैं।

❑❑❑

22 पशु रोगों का घरेलू उपचार

यदि पशु पालन किया जा रहा है तो पशु रोगी भी होंगे और उनका उपचार भी आवश्यक होगा। रोगी पशु के उपचार में पशु चिकित्सालय का दूर होना, रोग ग्रस्त पशु का वहाँ न पहुँच पाना, पशु चिकित्सक की कठिन उपलब्धता, औषधियों का महंगा होना, औषधि का उपलब्ध न होना, औषधियों का कठिन उपयोग एवं शेष बची औषधि का बेकार होना आदि कठिनाइयाँ हैं। अतः घर के मसाले या आसपास उपलब्ध फूल पत्तियों से पशु रोग उपचार अत्यन्त रुचिकर एवं लाभदायी होगा। कुछ प्रमुख घरेलू औषधियाँ निम्नवत् हैः

1. अर्जुनः *भूख न लगना तथा कमजोरी–* एक भाग अर्जुन की छाल को दो भाग पानी में मिलाकर उबाल लेते हैं। 300 मि.ली. अर्क को दिन में तीन बार देते हैं।

खूनी पेचिश, आँख में दर्द, पूंछ टूटना, खाँसी तथा गंजापन– इसके फल और पत्तियाँ पुरानी पशु चिकित्सा पद्धति में उक्त वर्णित रोगों में प्रयुक्त होते हैं।

2. अजवायनः *खुरपका–मुंहपका रोग–* रुई की सहायता से घावों पर अजवायन का तेल लगाते हैं। तेल को अन्य भागों पर नहीं लगने देना चाहिए तथा फिर उसी स्थान पर नारियल का तेल लगाते हैं जिससे कि अजवायन का प्रभाव कम हो सके।

खांसी– अजवायन के फलों का अर्क जैव प्रतिरोधी व वातरोधी होता है तथा खांसी में प्रयुक्त होता है।

अन्य रोग– इसके फल देशी चिकित्सा पद्धति में जुगाली न करना, माता, बुखार, थनैला, कर्णपटलशोध, रक्तमेह (हीमेचूरिया), जलशोफीय उदरशोथ, गर्भाशय में बच्चा फंसना (डिस्टोकिया) और अपच आदि रोगो में प्रयुक्त होते हैं।

3. अदरकः *कमजोरी–* घोडों और पशुओं में कमजोरी के कारण उत्पन्न दुर्बलता में अदरक, उद्दीपक वातरोधी के रुप में प्रयुक्त होता है।

पाचक– अदरक के प्रकन्द को लहसुन, काली मिर्च और जीरा के साथ बराबर मात्रा में पीसकर खिलाने से पशुओं की पाचन शक्ति बढ़ जाती है।

4. अमलतासः *धामिन नामक सर्प विष में–* अमलतास के पुराने पत्तों के साथ सरजोम (शोरिया रोबस्टा) के रेजिन को जमाकर उनका धुंआ पशु को सुंघाते हैं। इसके साथ–साथ 3–5 'ईसहार लोरी' (एरिस्टोलोकिया इंडिका) की जड़ों को 7 काली मिर्च के साथ मिलाकर लेई बनाते हैं। इसे उपरोक्त

के साथ मुख द्वारा देते हैं। उपरोक्त उपचार को प्रतिविष के रुप में प्रयुक्त करते हैं।

दस्त– अमलतास के तने की छाल के अर्क को दस्त रोकने हेतु दिया जाता है।

त्वचा संक्रमण– इसकी फलियों की लेई, जो स्थानीय रुप में 'तिला' के नाम से जानी जाती है, को त्वचा संक्रमण में प्रयोग करते हैं।

पेचिश– पत्तियों के रस को दही के साथ मिलाकर देने से पेचिश में आराम मिलता है।

5. अफीमः *उदरशूल–*इसे क्लोरल हाइड्रेट के साथ मिलाकर एक युक्तिसंगत विरेचक के रुप में घोड़ों के उदरशूल में इसका इस्तेमाल करते हैं।

दस्त व पेचिश– इसे चाक मिट्टी या खैर जैसे स्तम्भक के साथ मिलाकर दस्त व पेचिश में प्रयोग करते हैं।

*आँखों में कृमि–*2 ग्राम अफीम (लैटेक्स) को पानी के साथ रगड़कर एक लेप बना लेते हैं। इस लेप को 25 ग्राम दही में मिलाकर मलहम तैयार करते हैं। इसे आंखों में प्रतिदिन, ठीक होने तक डालते हैं।

6. अरण्डीः *वाह्य परजीवी नाशक–* पूरे शरीर पर अरण्डी का तेल लगाकर इससे मालिश करते हैं, जिसके कारण कुछ वाह्य परजीवी चिकनाहट के कारण शरीर से फिसलकर नीचे गिर जाते हैं तथा कुछ अन्धे हो जाते हैं, जो बाद में मर जाते हैं। यह क्रिया 4–5 दिन तक लगातार करनी चाहिए।

रक्तमेहः उपचार से पूर्व विरेचन की क्रिया करते हैं। विरेचन के लिये 60 ग्राम साधारण नमक को 500 मि.ली. अरण्डी के तेल में घोलकर हल्के से गर्म करते हैं तथा गुनगुनी अवस्था में पशु को देते हैं। अब 30 ग्राम जामुन की छाल के चूर्ण को 360 मि.ली. पानी में मिलाकर छान लेते हैं। निस्यन्दन को 1 लीटर दही में मिलाकर मथते (विलोडन) हैं जिसे दिन में दो बार मुख द्वारा देते हैं।

पूंछ की गलन– अरण्डी के लैटेक्स को सिरिन्ज में भरकर पूंछ के प्रभावित भाग पर कुछ बूंदें डालते हैं जिससे पूंछ का गलना रुककर जल्दी से घाव भरने लगता है।

7. अलसीः *जलन व तप्त द्रव–दाह–* इसमें अलसी के तेल व चूने के पानी (केरोल ऑयल) को समान मात्रा में लेकर जले हुए स्थान पर लगाते हैं।

पुल्टिस के रुप में– त्वचा की सूजन में 10 ग्राम अलसी के आटे को 10 भाग गर्म पानी में मिलाकर अच्छी तरह मिश्रित कर लेते हैं। पुल्टिस की वाह्य सतह पर थोड़ा तेल लगा देते हैं, जिससे कि यह त्वचा पर न चिपके।

8. आमः *दूध बढ़ाने के लिये–* 200 ग्राम आम की छाल को पीसकर 1 कि.ग्रा. जौ और गुड़ के साथ पकाकर, ठंडा कर लेते हैं। अब इसे दो समान मात्राओं में विभाजित कर पशु को सुबह–शाम देते हैं।

9. बबूलः *घाव–* बबूल का गोंद 4 भाग तथा क्लोरोफॉर्म जल 6 भाग का ताजा बना हुआ मिश्रण श्लेष्म कहलाता है। सामान्यतया 0.18 मि.ली. श्लेष्म को 30 मि.ली. नारियल के तेल में घोल कर लगाते हैं, इसका ताजा घोल घाव को शीघ्र ठीक कर देता है।

सींग का टूटना– इसके उपचार के लिये बबूल की गोंद 36 ग्राम, सिन्दूर 24 ग्राम और अलसी का तेल 72 ग्राम लेकर अच्छी तरह से मिश्रित करके पेस्ट बनाते हैं और इसे टूटे हुये क्षेत्र में भरकर पट्टी बांध देते हैं।

10. काली मिर्चः *गर्भाशय का बाहर आना–* लगभग 30 ग्राम काली मिर्च के दानों को बारीक पीसकर 240 ग्राम गर्म घी में मिला लेते हैं। उपरोक्त औषधि को दिन में दो बार देते हैं। इस उपचार को प्रसव के पूर्व सन्देह की अवस्था में भी दिया जा सकता है। उपरोक्त के अतिरिक्त, 2 चिकनी सुपारी को जलाकर, राख को 120 ग्राम घी में मिलाकर दिन में तीन बार दिया जाता है।

साँप की केंचुली (स्लोह) को खा जाने पर– 30 ग्राम काली मिर्च के दानों के महीन चूर्ण को 240 ग्राम घी में मिलाकर गर्म करते हैं। इसे रोजाना सुबह ही पशु को खिलाते हैं।

11. कपूरः *वाह्य परजीवी नाशक–* वाह्य परजीवियों को नष्ट करने हेतु, 10 ग्राम कपूर को पशुओं को मुख द्वारा देते हैं।

हृदयी उद्दीपक– कपूरयुक्त तेल (कपूर एक भाग, जैतून का तेल चार भाग) की निम्नलिखित मात्राएं अंतः मांसपेशीय या अंतःत्वचीय इंजेक्शन के द्वारा प्रतिवर्ती हृदयी उद्दीपक के रुप में देते हैं। अधिक लाभ के लिये उपरोक्त मात्राओं में 2 भाग ईथर मिला देते हैं।

12. कुचलाः *क्षुधावर्धक व समान्य टॉनिक–* इसे बदहजमी में खाने का सोडा के साथ मिलाकर देते हैं।

मेरुरज्जु उद्दीपक– कुचला को पक्षाघात व मूत्राशय तथा आंतों की दुर्बलता में प्रयुक्त करते हैं।

घोड़ों का पेट दर्द– आंतों में मल के रुकने के कारण उत्पन्न पेट दर्द में कुचला को अमोनियम कार्बोनेट के साथ मिलाकर देते हैं।

13. खैरः *दस्तरोधी–* खैर की पत्तियों एवं युवा अंकुरित पौधों का सत्व (रस) एक शक्तिशाली कब्जावर (कब्ज करने वाला) एवं दस्तरोधी है। इसे घोड़ों एवं गोवंशीय पशुओं को लगातार रहने वाले दस्त एवं पेचिश में चाक व अदरक के पाउडर के साथ मिलाकर देते हैं। इसे तीव्र रोगी को अफीम के साथ मिलाकर, अच्छी तरह उबले हुये दलिये के साथ भी देते हैं।

14. गूलरः *पोंकनी रोग–* गूलर की छाल को प्याज, जीरा व नारियल के साथ मिलाकर पीस लेते हैं तथा फिर इसमें सिरका मिलाकर इसे पोंकनी रोग में पशुओं को दिया जाता है।

घाव– गूलर की छाल को बिल्ली या चीते के काटने के कारण बने घाव में उत्पन्न विष को दूर करने के लिये लगाते हैं।

सर्पदंश– 240 ग्राम गूलर की छाल को महीन पीसकर 960 मि.ली. छाछ में मिलाकर 10 मिनट तक मथकर निचोड़ लेते हैं। इस मिश्रण के 250 मि.ली. को प्रत्येक 4 घंटे बाद, पशु के आराम होने तक देते हैं।

जेर का देर से गिरना या ना गिरना– मादा पशु को 1 कि.ग्रा. गूलर के फल खिलाने से आराम आता है।

त्वचा रोग– गूलर की छाल के महीन चूर्ण को करंज के बीज के तेल में मिलाकर एक लेप बना लेते हैं, जिसे त्वचा रोगों में वाह्य रुप से लगाते हैं।

15. गिलोयः *कब्ज–* गिलोय की पत्तियों को कुछ मिर्च व लाल चने के साथ मिलाकर, कूट–पीस कर एक पेस्ट बना लेते है। इस पेस्ट को कब्ज होने पर देते हैं।

अन्य रोग– तना और छाल का अर्क कृमिरोधी, ज्वरनाशी, मूत्रल, रक्तशोधक और हृदयी उद्दीपक के रुप में प्रयुक्त होता है। कमजोर व दुबले–पतले घोडों को गर्मी व बसंत ऋतु में घास के साथ गिलोय का चूर्ण मिलाकर खिलाते हैं। दौरों में घोड़ों को गिलोय, सतावरी व अश्वगन्धा के पेस्ट को भी चटाते हैं।

16. घी कुँवरः *विरेचक–* अनुप्रस्थ कटी हुई पत्तियों का रस विरेचक के रुप में घोडों में 15 से 28.8 मि.ली., गाय व भैस में 30 से 60 मि.ली., भेड़–बकरी व सूअरों में 7.2 से 15 मि.ली. और कुत्तों में 600 मि.ग्रा. पिलाते हैं।

गर्भाशय बाहर आना– 240 ग्राम घी कुँवर के गूदे को 480 ग्राम दही व 480 मि.ली. पानी में मिलाकर मथ लेते हैं। इसे पीड़ित पशु को दिन में एक बार मुख द्वारा देते हैं।

17. चिरायताः *गौ चेचक–* लगभग 24 ग्राम सम्पूर्ण चिरायता के पौधों को (पत्तियों सहित) महीन पीसकर 250 मि.ली. पानी में घोल लेते हैं। उपरोक्त मिश्रण को रोजाना दिन में दो बार देते हैं।

बुखार– चिरायता के सम्पूर्ण पौधें को छोटे–छोटे टुकडों में काटकर, पानी में उबाल लेते हैं। प्राप्त अर्क में से 300 मि.ली. रोजाना, बुखार ठीक होने तक देते हैं।

18. चिरौंजीः *मिर्गी दौरा–* 6 ग्राम चिरौंजी और 36 ग्राम तारपीन का तेल एक साथ मिलाकर रोज सुबह मुख द्वारा पशुओं को देते हैं।

कन्धे या कूल्हे के जोड़ का उतरना– 120 ग्राम चिरौंजी की जड़ की छाल को महीन पीसकर छान लेते हैं। इसे दिन में दो बार 1 लीटर दूध के साथ मुख द्वारा देते हैं।

19. जमालगोटाः *फफोला व फुंसी–* इसे पशुओं के साधारण फफोले व फुंसी वाले मरहम में 1 : 8 के अनुपात में प्रति प्रकोपक के रुप में मिलाते हैं।

दस्त– जमालगोटा (क्रोटोन) का तेल आंत्रीय श्लेष्मकला पर उत्तेजक का कार्य करता है और इसलिये यह एक शक्तिशाली पानी निकालने वाला विरेचक है, जो कब्ज ठीक करता है।

20. जामुनः मधुमेह– बीजों का जलीय सार, जब कुत्तों में इंजेक्शन द्वारा दिया जाता है तो यह रक्त में शर्करा की मात्रा को लम्बे समय तक कम रखता है। इसी सार को मुँह द्वारा देने पर ऐसा प्रभाव नहीं होता है।

पेचिश– जामुन की छाल के सार को दही में मिलाकर देने से पेचिश दूर हो जाती है। इसकी छाल को पीसकर इसका सार प्राप्त करते हैं, जिसके 5–8 चम्मच को 250 ग्राम दही में मिलाकर दस्त या पेचिश से पीड़ित पशु को दिन में तीन बार, ठीक होने तक देते हैं।

21. ढाकः *नर पशु के अण्डकोशों में सूजन*– लगभग 1 कि.ग्रा. पलाश के फूलों को 10 लीटर पाली में उबालते हैं। अब इन गर्म फूलों को पानी से बाहर निकालकर प्रभावित भाग पर रखकर पट्टी बांध देते हैं। बचे हुये गुनगुने पानी से अब सिकाई करते हैं।

पेट के कृमि– 7 अदद पलाश के बीज को 30 ग्राम नमक के साथ मिलाकर बारीक पीसकर छान लेते हैं तथा इसे 120 मि.ली. पानी में मिला लेते हैं। इसे दिन में दो बार मुख द्वारा देते हैं।

नपुंसकता या बंध्यता– 2 अदद पत्तियों के आधार पर उपस्थित पर्वो (नोड्स) को रोटी के साथ रोज सुबह एक माह तक देते हैं।

22. तिलः *जेर का न गिरना*– 100 ग्राम तिल के बीजों के चूर्ण को भिण्डी के बीज के 25 ग्राम के साथ पीस लेते हैं तथा गुड़ व चावल को धोने के पश्चात् प्राप्त पानी में मिलाकर गाय/भैंस को देते हैं।

23. धतूराः ***घाव***– इसकी पत्तियों का चूर्ण घावों या चोटों पर लगाया जाता है, क्योंकि यह मवाद व सूजन से राहत पहुँचाता है। धतूरे की पत्तियों का अर्क स्नायु रोगों व गठिया में लाभ पहुँचाता है।

24. धनियाः *गर्भधारण*– लगभग 100 ग्राम धनिये के दानों को महीन पीसकर गुड़ के साथ मादा पशु को मैथुन के बाद गर्भधारण के लिये देते हैं।

गौ चेचक– लगभग 240 ग्राम हरे या 120 ग्राम सूखे दानों को महीन पीसकर एक लीटर पानी में घोल लेते हैं तथा इसे बिना छाने पशु को दिन में दो बार मुख द्वारा देते हैं।

25. नींबूः *कृमि नाशक*– नींबू की जड़, तिमूर (जेन्थोक्सीलम एरमाटम) व नमक समान मात्रा में लेकर कूट–पीस कर चूर्ण बना लेते हैं। इस औषधि की 4–8 चम्मच मात्रा पशुओं को शरीर भार के अनुसार 2–3 दिन तक दिन में तीन बार देते हैं।

26. नीमः *आंखों के कृमियों में*– लगभग 12 ग्राम नीम की पत्तियों को 24 ग्राम नमक के साथ अच्छी तरह पीसकर लगभग 960 मि.ली. पानी में

उबालकर छान लेते हैं। इस गुनगुने अर्क को आंखों में, दिन में दो बार, ठीक होने तक डालते हैं।

गले में सूजन– यह कुछ कीड़ों के खाने के कारण होती है। इसमें सूजे हुये गले में नीम की पत्तियों के अर्क से दिन में 2–3 बार गरारे (फोमेन्टेसन सेक लगाना) कराते हैं।

खुरपका–मुँहपका– लगभग 1 कि.ग्रा. नीम की पत्तियों को बारीक पीसकर 15 लीटर पानी में उबाल लेते हैं। अब इसे छानकर गुनगुनी अवस्था में इससे दिन में दो बार पशु का मुंह धोते हैं। मुंह धोने के पश्चात् लगभग 24 ग्राम बैकल की पत्तियों की राख तथा डीकामाली (गार्डेनिया गमीफेरा) के गोंद के चूर्ण को 60 ग्राम अलसी के तेल में अच्छी तरह से मिला लेते हैं तथा इसे मुंह व पैरों के घावों पर लगाते हैं।

जूं और अन्य वाह्य परजीवियों– प्रभावित पशु को नीम की पत्तियों के अर्क के गुनगुने पानी द्वारा 5 दिन तक नहलाते हैं। नहलाने के बाद शरीर पर नीम के तेल की मालिश कर देते हैं।

27. प्याजः *मक्खी का नाक द्वारा अंदर चले जाना–* बरसात के मौसम में एक सफेद मक्खी चरागाह में साबुन के झाग जैसे घोंसले के अंदर पायी जाती है। यह मक्खी पशु के चरते समय नाक द्वारा अंदर जाकर हानि पहुँचाती है। इससे भैंस की अपेक्षा गाय अधिक प्रभावित होती है, क्योंकि गाय का श्वसन भैंस की अपेक्षा कमजोर होता है और भैंस इस मक्खी को निःश्वसन द्वारा बाहर निकाल देती है। इसके उपचार हेतु प्याज और लहसुन का 12–12 ग्राम रस लेकर अच्छी तरह मिला देते हैं। अब इसकी 5–15 बूंद दोनों नासाछिद्रों में डालते हैं, यदि कोई आराम न हो, तो आधे घंटे पश्चात् यही उपचार दोहराते हैं।

मधुमक्खी, कालीमक्खी या बर्र आदि के काटने या डंक मारने पर– 500 मि.ली. प्याज के कंद का सार, सुबह–शाम मुख द्वारा, पशु के निरोग होने तक देते हैं।

28. पुनर्नवाः *दुग्धवर्धक–* पुनर्नवा, दुधारु गाय को दूध बढ़ाने के लिये देते हैं। स्वादिष्ट होने के कारण भेड़ बकरियां इसे बड़े चाव से खाती हैं।

लंगडी रोग– पुनर्नवा की जड़ों को पीसकर उन्हें गेहूँ के आटे की रोटी में लपेटकर गाय–भैंसों के लंगडी रोग या ब्लैक क्वार्टर, जिसे जम्मू और कश्मीर में 'बखे–अली–रोग' के नाम से जाना जाता है, में दिया जाता है।

29. बांसः *दस्त–* दस्त में कोमल पत्तियों को काली मिर्च व नमक के साथ मिलाकर पशु को खिलाने से दस्त रुक जाते हैं। यह मिश्रण घोड़ों को खांसी व जुकाम में भी दिया जाता है।

अस्थि भंग– बांस के कोमल पौधे + अण्डा + तिल के तेल को एक साथ मिलाकर लेप बना लेते हैं। इसे टूटे हुये भाग पर लगाते हैं।

30. बेलः *आग से जलना–* 500 ग्राम बेल के गूदे को एक लीटर पानी में डालकर जाली में रगड़ते हैं (मेस) और फिर इसे छान लेते हैं। अब इस विलयन में एक कि.ग्रा. दही मिलाकर जोर से हिलाते हैं, इसे पीड़ित पशु को दिन में तीन बार ठीक होने तक मुख द्वारा देते हैं।

पेचिश– पशु की आंत में सूजन, विशेषतः बड़ी आंत में, तथा पेट में दर्द, पेचिश और लगातार श्लेष्म व खून मिश्रित गोबर का गिरना, इस रोग के मुख्य लक्षण हैं। इसमें लगभग 12 ग्राम कत्था व इतनी ही मात्रा में भांग (कैनाबिस सैटाइवा) को महीन पीस लेते हैं। अब लगभग 120 ग्राम बेल के गूदे को 500 मि.ली. पानी में डालकर मिश्रित कर लेते हैं तथा फिर इसे छानकर, विलयन को अलग रख लेते हैं। इन सभी अवयवों को एक लीटर दही में डालकर अच्छी तरह विलोपित करते हैं। अब इसे दिन में दो बार मुख द्वारा पशु को ठीक होने तक देते रहते हैं।

31. भांगः *पेचिश–* लगभग 20–30 ग्राम भांग के पिसे हुये बीजों को 600 मि.ली. दही में मिलाकर वयस्क पशु को दिन में दो बार देते हैं। इसे सामान्यतः 3 दिन देते हैं। अवयस्क पशुओं को उम्र के अनुसार औषधि की मात्रा घटाकर देते हैं। कहा जाता है कि यह खूनी पेचिश भी ठीक कर देता है।

आंतःकृमिनाशक– 15–20 ग्राम पत्तियों का अर्क पके हुये खाद्य पदार्थ के साथ मिलाकर दिन में दो–बार 2–4 दिन तक देते हैं।

32. महुआः *पेट दर्द तथा अस्थि भंग–* महुवे की छाल घोड़ों के पेट दर्द तथा अन्य पशुओं के अस्थि भंग में प्रयुक्त होती है।

खुरों के घाव– महुवे के बीजों को पीसकर गाय, बकरियों व भेड़ों के खुरों में उत्पन्न घावों पर लगाते हैं।

पोंकनी रोग या रिन्डरपेस्ट– महुवे के फूलों को प्याज के कंद, काली मिर्च और कुण्डली या काटा गुरकमाई (एजिमा टेट्राकेन्था) की पत्तियों के साथ पीस लेते हैं तथा पीड़ित पशु को एक सप्ताह तक लगातार देते हैं।

33. माजूफलः *गर्भाशय का बाहर निकलना–* माजूफल (करकस) के दो फलों को महीन पीसकर इसे 240 ग्राम गर्म घी में मिलाकर, दिन में दो बार पांच दिन तक देते हैं। इस दौरान पशु को नरम, हल्का, पोषक व महीन चारा देना चाहिए तथा पशु की साफ–सफाई का विशेष ध्यान रखना चाहिए।

34. मेथी

जलना या मलाशय का घावः 480 ग्राम मेथी के बीजों को महीन पीसकर 1.8 लीटर पानी में मिलाते हैं तथा इसमें 960 ग्राम दही मिलाकर इसे अच्छी तरह मथ लेते हैं और पशु को दिन में दो बार मुख द्वारा देते हैं।

संधिशोथ या जोड़ों के दर्दः 720 ग्राम मेथी के बीजों को 720 ग्राम चकवाड (*Cassia tora*) के बीज तथा 60 ग्राम काला नमक के साथ महीन पीसकर छान लेते हैं। अब इसे 4 लीटर पानी में 8 घंटे तक भिगोते हैं। इसे दिन में दो बार मुख द्वारा देते हैं। इस दौरान पशु को हरा चारा देना चाहिए।

35. लहसुन

उपचारः 30 ग्राम इन्द्रायन (सिट्रूलस कोलोसिन्थिस) + 24 ग्राम सौंठ + 12 ग्राम नमक + 60 ग्राम लहसुन + 30 ग्राम गुड़ को बारीक पीसकर 300 मि.ली. पानी में तब तक गर्म करते हैं जब तक कि इसकी मात्रा आधी न हो जाये। अब इसे बिना छाने दिन में दो बार गुनगुना पशु को दें। पीने के समय इस अर्क में 9 ग्राम बंशलोचन भी डाल दें।

36. लाजवन्ती

बांझपनः लाजवन्ती की पत्तियों को लहसुन व काली मिर्च के साथ कूट पीस कर एक पेस्ट बना देते हैं। लगभग 30 ग्राम पेस्ट को बांझ गायों को प्रजनन शक्ति बढ़ाने के लिये देते हैं। इसको पेशाब नली से संबंधित संक्रमण को दूर करने के लिये भी देते हैं।

गर्भाशय का शरीर से बाहर निकलनाः लाजवन्ती की पत्तियों को काली मिर्च, लहसुन, प्याज और केसर के साथ कूट–पीसकर पेस्ट बना कर खिलाते हैं तथा पत्तियों के अर्क को गर्भाशय के शरीर से बाहर निकलने की स्थिति में, गर्भाशय के चारों तरफ लगाते हैं।

37. शतावर

दुग्ध वर्धकः ताजी जड़ों को साफ करके व काटकर मादा पशु को खिलाने से दुग्ध उत्पादन बढ़ता है।

पेचिशः इसकी जड़ों को अतिसार व पेचिश में खिलाने से आंतों के घाव भर जाते हैं।

क्षणिक बुखारः शतावर के कन्दमूल को कुण्डली या काटा गुरकमाई (एजिमा टेट्राकान्था), पुदीने और लहसुन की पत्तियों के साथ पीसकर क्षणिक बुखार (इफेमेरल फीवर) में मुख द्वारा देते हैं।

पशु प्लेग या चेचकः इसकी जड़ें पशु प्लेग या चेचक (रिन्डरपेस्ट) रोग में पशु को दी जाती हैं।

पेट के कीड़ेः इसकी जड़ों को कूट व पीसकर पानी में मिलाकर लेई बना लेते हैं तथा पशु के पेट के कीड़े मारने के लिये इसे मुंह द्वारा दिया जाता है।

38. हल्दी :

बधियाकरणः लगभग 100 ग्राम हल्दी के ताजे प्रकंदों को पीस कर 500 मि.ली. दूध में उबाल लेते हैं तथा इसे बधियाकरण के पश्चात् उत्पन्न होने वाली

कमजोरी में पशु को दिन में दो बार 21 दिन तक लगातार देते हैं। इसको गिल्टी (ऐन्थ्रेक्स) रोग में भी प्रयुक्त किया जाता है।

अन्य रोगः हल्दी के प्रकंद के अर्क का उपयोग कृमिनाशक, वातरोधी, हेल्मिन्थरोधी तथा गठियारोधी के रुप में भी किया जाता है।

39. हड़जोड़

पीठ–दर्दः ताजे तनों को घोड़ों व ऊँटों के पीठ–दर्द में प्रयोग करते हैं।

टूटी हड्डीः हड़जोड़ की तीन अंतर पर्ण संधियों को 100 ग्राम अदरक के साथ कूट–पीस लेते हैं। इस पीसे हुये मिश्रण को पशु की टूटी हड्डी के ऊपर रख देते हैं। यदि जरुरी हो तो टूटी हड्डी के चारों ओर 3–4 बांस की लकड़ियां लगाकर पट्टी बांध देते हैं। यह उपचार 15 दिन तक जारी रखते हैं।

टूटी हड्डीः हड़जोड़ के एक टुकड़े को कुमवी (कैरेया आर्बोरिया) एवं मंहुल (मधुका लोंगीफोलिया) की छाल तथा पाकुर (फाइकस बेंगालेन्सिस) की वायवीय जड़ों के अगस्थ भाग के साथ कूट–पीस कर मिश्रण बना लेते हैं तथा इसे पशुओं की टूटी हड्डी पर लगाते हैं। अब इस पर सेहारी (बोहिनिया वाहली) की पत्तियों और छाल को रखकर पटिट्यों द्वारा बांध दिया जाता है।

प्रजनन शक्ति बढ़ाने के लियेः हड़जोड़ के ताजे तने को नागाडोण्डा (कोरालो–कारपस) के फलों, संतरा तथा नमक के साथ मिलाकर, कूट–पीसकर पशु को देते हैं।

40. हींग

अपचः लगभग 1/2 लीटर पानी गर्म करते हैं अब इसमें लगभग 60 ग्राम बारीक पिसा हुआ काला नमक तथा 12 ग्राम हींग मिलाकर तब तक उबालते हैं जब तक इसकी मात्रा 400 मि.ली. न हो जाये। अब इसे आग से उतारकर इसमें 360 मि.ली. तिल का तेल (सीसेमम) मिलाकर इसे अच्छी तरह से मिश्रित करके लेई बना लेते हैं। गुनगुनी अवस्था में ही इसे पशु को देते हैं।

खुरपका व मुँहपकाः बरसात व सर्दी के मौसम में पशु को ऐहतियाती निरोध उपायों के अंतर्गत 10 ग्राम हींग के चूर्ण को लगभग 250 मि.ली. सरसों के तेल के साथ मुख द्वारा प्रति सप्ताह देना चाहिए, इससे खुरपका मुँहपका रोग नहीं होता है।

दमा (सर्दी के कारण): लगभग 30 ग्राम सूखी तुलसी की पत्तियां, 60 ग्राम काला नमक तथा 10 ग्राम हींग को महीन चूर्ण के रुप में पीस लेते हैं। अब इसे सरसों के तेल में मिलाकर लगभग 60^0 सेल्सियस तापमान तक गर्म करते हैं। इसे पशु के स्वस्थ होने तक दिन में दो बार मुख द्वारा देते हैं।

❑❑❑

23 रोगों से बचाव हेतु पशु बाड़े की सफाई

रोगों से बचाव हेतु पशु बाड़े की सफाई

प्रायः देखा गया है कि पशुपालकों द्वारा पशुओं की समुचित देखभाल के बाद भी पशुओं को किसी न किसी बीमारी जैसे थनैला इत्यादि से परेशान होना पड़ता है। यह इसलिए कि पशुशाला की साफ–सफाई व्यवस्था में अनदेखी होने से पशु बार–बार बीमार पड़ते हैं व कई बार तो नई बीमरियाँ भी पशुशाला में प्रवेश कर जाती हैं।

अतः पशुपालकों को चाहिए कि पशुशाला की सफाई नियमित रूप से करें। स्वच्छ पशुशाला, पशुओं को बेहतर स्वास्थ्य प्रदान करती है, जिसके कारण पशुओं का उत्पादन भी बढ़ता है तथा पशु रोगों के उपचार पर होने वाले खर्च को भी कम किया जा सकता है।

पशुशाला की सफाई कब करें और कहाँ करें?

1 पशुशाला के फर्श व दीवार आदि की सफाई प्रत्येक दिन नियमित रूप से प्रातः व सायं दो बार करनी चाहिए।

2 पशुशाला में खुरपका–मुँहपका जैसी बीमारी होने की दशा में पशुशाला की सफाई के उपरान्त उसे फिनाइल इत्यादि के छिड़काव द्वारा रोगाणु रहित भी करना चाहिए।

3 गाभिनपशु के ब्याने वाले स्थान पर पशु को लाने से पूर्व तथा बाद में नियमित रूप से दिन में दो बार सफाई करने के पश्चात् फिनाइल आदि का छिड़काव भी करना चाहिए।

पशुशाला की सफाई किस प्रकार करें?

पशुशाला की सफाई की दो महत्वपूर्ण प्रकियाएँ हैं सफाई (clearing) एवं कीटाणुनाशन या निसंक्रमण (disinfection):

1. सफाई: सफाई एक ऐसी प्रकिया है जिससे बाड़े में मौजूद धूल, मिट्टी, कचरा व अन्य अनुपयोगी वस्तुओं को हटाया जाता है। इस प्रक्रिया से ही 90 प्रतिशत तक जीवाणु समाप्त हो जाते हैं जो पशुशाला की अनेक वस्तुओं पर मौजूद रहते हैं पशुशाला को स्वच्छ रखने के लिए दिन में कम से कम दो बार गोबर और गोमूत्र की सफाई करें। सफाई के लिए प्रति 50 पशुओं पर एक मजूदर लगाना चाहिए। सफाई के लिए साबुन (soap) अथवा डिटर्जेण्ट (detergent) का उपयोग भी कर सकते हैं। यह प्रकिया निसंक्रमण प्रकिया से पहले करनी चाहिए। इसके अतिरिक्त दीवारों पर लगे गोबर के धब्बों की भी अच्छी तरह से सफाई करनी चाहिए।

- गोशाला में लगे मकड़ी के जालों को समय–समय पर साफ करना चाहिए।

- दीवारों को सप्ताह में कम से कम एक बार ब्रुश से साफ करना चाहिए।
- सफाई के बाद गंदे पानी को निकासनाली से बाहर कर पशुशाला से दूर खेतों में निष्कासित करना चाहिए।
- एक वर्ष में कम से कम दो बार दीवारों की सफेदी करनी चाहिए।
- मक्खी, मच्छरों और अन्य कीटों की रोकथाम के लिए बाजार में उपलब्ध कीटनाशकों का उपयोग, पशुचिकित्सक से सलाह लेकर करना चाहिए।

2 निसंक्रमण/कीटाणुनाशनः यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें कीटाणु नाशक पदार्थों (disinfectants) का प्रयोग किया जाता है। यह प्रकिया साफ तरह पर सफाई के उपरान्त ही सम्पन्न की जाती है जिससे लगभग समस्त जीवाणु समाप्त हो जाते हैं।

कीटाणुनाशन में प्रयोग किए जाने वाले पदार्थ :

1 कपड़ा धोने का सोडा–वाशिंग सोडा का पानी में 4 प्रतिशत घोल बनाकर छिड़काव करने से जीवाणु, विषाणु एवं कीटाणु समाप्त हो जाते हैं।

2 चूना–1 किलो चूने को 25 लीटर पानी में घोल कर, इसका छिड़काव पशुशाला की फर्श, दीवार एवं मिट्टी पर किया जाता है।

3 लाल दवा या पोटेशियम पर मैग्नेट (KMNO4)–यह एक सस्ता विकल्प है व पशुशाला के लिए उपयोगी है। इसका 0.001 प्रतिशत पानी का घोल उपयोग में लाया जाता है।

4 क्लोरीन यौगिक–यह साफ सतह पर ही प्रभाव करती है। पशुशाला में धूल, मिट्टी व गोबर होने से, यह यौगिक कम उपयोगी सिद्ध होता है।

5 ब्लीचिंग पाउडर–इस यौगिक में 39 प्रतिशत क्लोरीन उपलब्ध होता है। इस यौगिक का प्रयोग भी सफाई प्रक्रिया के उपरांत ही किया जाना चाहिए।

6 क्वाटरनरी अमोनियम (Quaternary Ammonium)-यह एक गंधरहित एवं रंगहीन यौगिक है। इनका प्रभावशाली उपयोग कीटाणुनाशन प्रक्रिया में देखा गया है।

7 फिनाइल–इसका 4 प्रतिशत घोल उपयोगी होता है।

8 फार्मैल्डिहाइड गैस–इसका प्रयोग जानवर व मनुष्यों के लिए घातक सिद्ध हो सकता है। अतः जब पशु दो से तीन दिन तक किसी पशुशाला में न रहे तो वहाँ सम्पूर्ण कीटाणुनाशन हेतु इसका प्रयोग कर सकते हैं।

9 फार्मैलिन–5 प्रतिशत फार्मेलिन का छिड़काव बंद कमरे में कुछ घण्टों (10 घंटे) के लिए किया जाता है। इस समय पशुशाला में पशु नहीं होने चाहिए।

10 आयोडीन यौगिक–इन यौगिक में मौजूद 1.2 प्रतिशत आयोडीन एक अच्छा कीटाणुनाशक है। इसका प्रयोग नियमित कीटाणुनाशन के लिए कर सकते हैं।

इनके अतिरिक्त सूर्य की किरणें व शुद्ध हवा की उपलब्धता भी पशुशाला में रहने वाले बीमार जानवरों की स्थिति को सुधार सकते हैं। प्रत्येक पशु को सूर्य के प्रकाश व शुद्ध हवा की प्रचुर मात्रा उपलब्ध कराई जानी चाहिए।

कीटाणुनाशन यौगिकों का उपयोग कैसे करें?

1. पोछा लगान–प्रायः कपड़े को कीटाणुनाशक घोल में भिगोकर पशुशाला की सतहों जैसे फर्श, मेज, कुर्सी पर पोछा लगाकर निसंक्रमित किया जाता है।
2 छिड़काव–यह पोछने की अपेक्षा ज्यादा कारगर है। तेज दबाव वाली स्प्रेयर मशीन का उपयोग कर पशुशाला को निसंक्रमित किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त, हाथ से प्रयोग होने वाले स्प्रेयर का इस्तेमाल भी उपयुक्त रहता है।

सफाई एवं कीटाणुनाशन प्रक्रिया में ध्यान देने योग्य बातें

1. पशुशाला को खाली रखना चाहिए। इससे पशुपालक को सफाई करने में आसानी रहेगी व पशुओं को भी हानिकारक रसायन से होने वाली समस्याओं का सामना नहीं करना पड़ेगा।
2. पशुओं के मल–मूत्र को निसंक्रमित कर दूर निस्तारित करना चाहिए अथवा इनका इस्तेमाल उपले आदि बनाने या खेत में खाद के रूप में करना चाहिए।
3. पशुशाला में मौजूद दाना व चारा (यदि सवंमित पशु द्वारा खाया गया हो तो) को पशुशाला से हटा देना चाहिए। खाने वाली नाद व बर्तनों को साफ व निसंक्रमित करने के पश्चात् सुखा कर ही दोबारा उपयोग में लाना चाहिए।
4 संक्रमित पानी या पानी के बर्तन का उपयोग दूसरे पशु द्वारा नहीं किया जाना चाहिए।
5 पशुशाला की मरम्मत–पुताई आदि दुरूस्त रखनी चाहिए। चूहे/मक्खी/मच्छर/चिड़ियाँ आदि का पशुशाला में प्रवेश निषिद्ध करना चाहिए।
6 बचे हुए कीटाणुनाशक घोल को पशुशाला में नहीं रखना चाहिए।
7 सभी निसंक्रमण पदार्थ खासकर रासायनिक पाउडर और घोल सामान्य रूप में जहरीले होते हैं। जो त्वचा, आंखों और श्वसन मार्ग को नुकसान पहुँचा सकते हैं। इनका इस्तेमाल करते समय चश्में, दस्ताने, मास्क आदि का इस्तेमाल करना चाहिए।

पशुपालक उपरोक्त विधियों का प्रयोग कर अपने पशुओं को स्वस्थ, रोगरहित तथा अधिक उत्पादक बना सकते हैं। इस प्रकार के उपायों से किसानों हेतु पशुपालन एक लाभकारी उपक्रम सिद्ध होगा।

❑❑❑

कुछ आवश्यक जानकारियाँ

	औसत तापमान	
	डिग्री0 फारेनहाइट	डिग्री0 सेन्टीग्रेट
घोड़ा	100.6	38.0
गाय तथा भैंस	101.6	38.6
भेड़ तथा बकरी	102.6	39.2
कुत्ता तथा बिल्ली	101.0	38.4
मुर्गी	107.0	41.6

सेन्टीग्रेड को डिग्री फारेनहाइट में बदलने के लिए 9/5 से गुणा करें तथा उसमें 32 जोड़ दें। डिग्री फारेनहाइट को सेन्टीग्रेड में बदलने के लिए 32 घटायें तथा 5/9 से भाग दें।

औसत गर्भकाल

घोड़ी	–	340 दिन
गाय	–	282 दिन
भैंस	–	310 दिन
सुअर	–	116 दिन
भेड़ तथा बकरी	–	148 दिन
कुतिया	–	60 दिन
बिल्ली	–	55 दिन

पशुओ का गर्मी (इस्ट्रस) काल

पशु	गर्मी का समय	दोबारा आने का समय
घोड़ी	2–11 दिन	22 दिन
गाय–भैंस	24–36 घंटे	21 दिन
भेड़ तथा बकरी	1–3 दिन	21 दिन
कुतिया	9–16 दिन	मौसम में
बिल्ली	7–10 दिन	एक बार

गाय में प्रसव की तारीख का पता लगाना

गर्भित करने की तिथि

1	1	1	1	1	1	1	1	1	1	1	1
जनवरी	फरवरी	मार्च	अप्रैल	मई	जून	जुलाई	अगस्त	सितम्बर	अक्टूबर	नवम्बर	दिसम्बर
प्रसव की तिथि											
7	7	5	5	4	4	6	7	7	7	7	6
अक्टूबर	नवम्बर	दिसम्बर	जनवरी	फरवरी	मार्च	अप्रैल	मई	जून	जुलाई	अगस्त	सितम्बर

दिनों को दोनों तिथियों में जोड़ दें। उदाहरण के लिए यदि गर्भित करने की तिथि 15 जनवरी है तो प्रसव की तिथि 22 अक्टूबर होगी।

❑❑❑

जीवाणु जनित, विषाणु जनित एवं कवक जनित रोगों का होम्योपैथिक उपचार

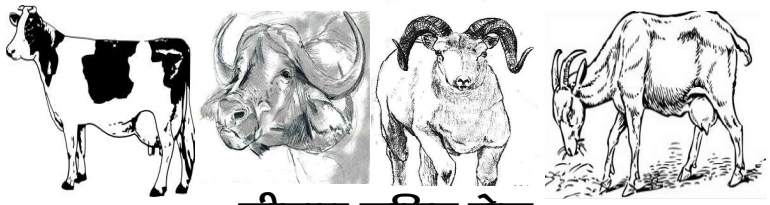

जीवाणु जनित रोग

(Bacterial Diseases)

क्र.सं.	नाम Name	लक्षण Symptoms	उपचार Treatment
1.	गलघोंटू (Haemorrhagic Septicemia)	ज्वर, न्यूमोनिया, गले में सूजन (Fever, pneumonia, Swelling at neck)	लैकेसिस, मर्क्युरियस Lachesis, Mercurius
2.	एन्थ्रेक्स, प्लीहा ज्वर (Anthrax)	प्राकृतिक छिद्रों से रक्त श्राव, ज्वर, दस्त (Blood from natural orifices, fever, diarrhea)	माइलेफोलियम, क्रोटेलस होरिडस (Milefolium, Crotalus horridus)
3.	लंगड़ा बुखार (Black quarter)	जांघ में सूजन, ज्वर, स्वांस अवरोध (Swelling at gluteus muscle, Fever, Dyspnoea)	हिपारसल्फ 1 एम, रसटॉक्स 1 एम (Heparsulph 1 M, Rhus tox 1 M)
4.	टेटेनस (Tetanus)	मांसपेशियों में अकड़न, जबड़बन्द, स्वारा अवरोध (Stifness of Muscle, Lock Jaw, Asphyxia)	बैलाडोना हाइड्रोसाइनिक अम्ल, कोल्चिकम लेड पाल (Belladonna Hydrocyanic acid, colchicum led. Pal.)
5.	ब्रेक्सी (Braxy)	ज्वर, भूख न लगना, सुस्त (Fever, Anorexia, Depression)	नक्स वोमिका, एकोनाइट, पल्साटिल्ला (Nux Vomica, Aconite, Pulsatilla)
6.	मैलिगनेंट एडिमा (Malignant edema)	ज्वर, लगड़ापन (Fever, Emphysema, Stifness)	मरक्यूरियस, ब्रायोनिया (Mercurius, Bryonia)
7.	आंत्र विषाक्तता (Enterotoxemia)	पेट की अगतिशील आंत्रशोध (Atony of Rumen, Enteritis)	कोलासिनथिस, हाइड्रासटिस, आर्सेनिकम (Colocynthis, Hydrastis, Arsenicum)
8.	भोजन विषाक्तता (Botulism)	ड़खड़ाहट, कमजोर मांसपेशी (Incordination, Ataxia of muscle, weeknessy)	आर्सेनिक, लैकेसिस (Arsenic, Lachesis)
9.	संक्रामक मूत्राक्तता (Infectious Haemoglobinuria)	मूत्र में हीमोग्लोबिन, रक्ताल्पता, ज्वर (Haemoglobinuria, fever, Anaemia)	फाइकस रेलिजिओसा, पल्सेटिल्ला (Ficus religiosa, Pulsetilla)
10.	काला बुखार (Infectious necrotic Hepatitis)	विषाक्तता, दर्द अवसाद (Toxaemia, Depression, Pain on palpation)	कोलोसिन्थिस एकोनिटिकम, आर्सेनिकम (Colocynthis, Aconiticum Arsenicum)
11.	सफेद दस्त (Colibacillosis)	भूख न लगना, ज्वर (Anorexia, Stifness of muscle, Fever)	एकोनाइट, नक्स वोमिका, आर्सेनिकम (Aconite, Nux vomica, Arsenicum)

12.	तपेदिक या क्षय रोग (T.B.)	ज्वर, न्यूमोनिया, दीर्घ लसीका ग्रन्थि (Fever, Bronchopneumonia Lymphnode enlargement)	आर्सेनिकम, ड्रोसेरा, लाइकोपोडियम (Arsenicum, Drosera, Lycopodium)
13.	उपांत क्षय रोग (Paratuberculosis)	दस्त, दुबलापन (Diarrhoea, Emaciation)	नक्स वोमिका, पल्सेटिल्ला, लैकेसिस (Nux vomica, Pulsatilla Lachesis)
14.	लेप्टोस्पाइरोसिस (Leptospirosis)	ज्वर, सुस्ती, भूख न लगना (Fever, Anorexia, Dipression)	फाइकस रेलिजिओसा, फॉस्फोरस, एपिस मेल (Ficus religiosa, Phasphorus, Apis mel.)
15.	लिस्टिरियोसिस (Listeriosis)	दिमागी ज्वर (Encephelitis)	आर्सेनिकम पल्सेटिल्ला, हाइड्रेसिस (Arsenicum, Pulsatilla, Hydrasis)
16.	एक्टिनोमाइकोसिस (Actinomycosis)	जबड़े की सूजन (Swelling on Mandible)	हैक्ला लावा एसिड फ्लोर (Hekla lava Acid flour)
17.	एक्टिनोबैसिलोसिस (Actinobacillosis)	अत्यधिक लार बहना, दीर्घ पैरोटिड लसिका ग्रन्थी (Excess Salivation, Large parotid lymph node)	काली हाइड्रॉइड मरक्यूरस (Kali Hydroid, Mercurus)
18.	ऐरिसिपेलस (Erysipelus)	ज्वर, भूख न लगना (Fever, Anorexia)	आर्सेनिकम, नक्स वोमिका, बेलोडोना (Arsenicum, Nux vomica, Belladonna)
19.	माल्टा बुखार (Brucellosis)	ज्वर, गठिया (Fever, Arthritis)	काउलोफाइलम, लैकेसिस (Caulophylum, Lachesis)
20.	कैम्पाइलोबैक्टीरिओसिस (Compylobacteriosis)	बच्चेदानी का मवाद, गर्भपात (Pyometra, Abortion)	एपिसमेल, हाइड्रासटिस (Apis mel. Hydrasitis)
21.	फुट रॉट (Food Rot)	लगड़ापन, पैर में घाव (Lamness, Wound on interdegital space)	आर्निका, कैलेन्ड्यूला, सिम्फाइटम (Arnica, Calendula Symphytum)
22.	स्ट्रैंगल (Strangles)	तेज ज्वर, लसिका ग्रन्थि सूजन (High fever, Lymphnode enlargement)	नक्स वोमिका, ब्रायोना, ड्रोसेरा एपिस मेल (Nux vomica, Brayoneia. Droserra Apis Mel)
23.	एक्ज्यूडेटिव एपिडरमिटिस (Exudative epidermetis	लसिका श्राव Lymph, exudation	एकोनिटम, रस, मरक्यूरा, आरसेनिकम (Aconitum, Rush, Mercura, Arsenicum
24.	ग्लेंडर्स (Glanders)	छाले त्वचा में (Ulcerative lesion in skin & mucus membrane)	मरक्यूरस, डलक्यूमारा, रस (Mercurus Dulcumara, Rhus)
25.	फाउल टाइफाइड (Fowl Typhoid)	बुखार (Septicaemia)	पल्सेटिल्ला, नक्स वोमिका, रस टॉक्स, सिम्फाइटस (Pulsatilla, Nux vomica, Rhus tox, Symphytum)
26.	पैरा टाइफाइड (Para typhoid)	भूख न लगना, पतले दस्त (Anorexia, watery diarrhoea)	नक्स वोमिका, पल्सेटिल्ला (Nux Vomica, Pulsatilla)
27.	फाउल कॉलरा (Fowl Cholera)	ज्वर, हरी दस्त (Fever, Greenish diaorrhea)	नक्स वोमिका, एकोनिटम, पल्सेटिल्ला (Nux vomica. Aconitum, Pulsatilla)

विषाणु जनित रोग
(Viral Diseases)

क्र.सं.	नाम Name	लक्षण Symptoms	उपचार Treatment
1.	खुरपका मुंहपका (F.M.D.)	ज्वर, लार श्राव, मुंह एवं पैर में छाले पड़ना (Fever, Salivation, Vesicle in feet & udder)	आर्सेनिकम, रस टॉक्स, मरक्यूरस सोलबिटिस (Arsenicum, rhus tox Mercurius solubilis)
2.	वेसिक्यूलर स्टोमेटाइटिस (मुंहपका रोग) (Vesicular stomatitis)	मुंह एवं पैर में छाले (Ulceration in mouth, foot & interdigital space)	आर्सेनिकम, रसटोक्स, मरक्यूरस साल्युबिस (Mercurius solubilis rhus tox, Arsenicum)
3.	वेसिक्युलर एक्सेन्थिमा Vesicular exanthema	ज्वर, मुंह एवं पैर में छाले Fever, Vesicle in mouth feet & tips	बोरेक्स, आर्सेनिकम, मरक्यूरस साल्युबिस (Borax, Arsenicum, Mercurius salubilis)
4.	कान्टेजियस एक्थइमा (Contagius Ecthyma)	मुंह एवं थन में फोड़े (Pustules on muzzle & teat)	नक्स वोमिका, आर्सेनिकम, बोरेक्स (Nux vomica, Arsenicum, Borax)
5.	पोंकनी (Rinder Pest)	ज्वर दस्त (Fever, Oral erosion, Diaorrhea)	एकोनिटम, नक्स वोमिका Aconitum, Nux vomica
6.	बकरी का प्लेग (PPR)	ज्वर, दस्त, न्यूमोनिया (Fever, diarrhoea, pneumonia)	अकोनिटम, नक्स वोमिका (Aconitum, Nux vomica)
7.	विषाणु जनित दस्त (B.V.D.)	ज्वर, दस्त (Fever. Diarrhea)	अकोनाइट, नक्स वोमिका, पल्सेटिल्ला (Aconite, Nux vomica, Pulsatilla)
8.	श्लेष्म शेध ज्वर (Malignant catarrhal fever)	ज्वर, आँख की सूजन दिमागी बुखार (Fever, Keratoconjunctivitis, Encephalitis	एकोनिटम, नक्स वोमिका, लैकेसिस (Aconitum, Nux vomica, Lachesis)
9.	लाल नाक (Infectious Bovine Rhinotracheithis)	ज्वर, जुकाम, श्वसन में तकलीफ (Fever, Rhinitis, Dyspnoea)	एकोनिटम, बेलाडोना, नक्स वोमिका (Aconitum, Belladonna, Nux vomica)
10.	अढैया बुखार (Bovine ephemeral fever)	ज्वर, लगड़ापन, कम्पन (Fever, Shifting lameness, Tremor	एकोनिटम, ब्रायोनिया, आर्सेनिकम (Aconitum, Bryonia, Arsenicum)
11.	बोवाइन ल्यूकोसिस काम्प्लेक्स (Bovine Leukosis complex)	रक्ताल्पता, भूख न लगना कमजोरी (Anaemia, Anorexia Weakness)	हाइड्रास्टैसिस, माइलेफोलियम, नक्स वोमिका (Hydrastis, Milefolium Nux vomica)
12.	विषाणु जनित न्यूमोनिया (नवजात) (Viral pneumonia in calf)	न्यूमोनिया, साँस में तकलीफ (Pneumonia,Dyspnoea)	एकोनाइट, लाइकोपोडियम नक्स वोमिका (Aconite, Lycopodium, Bryonia)

13.	सूकर ज्वर (Swine Fever)	रक्तस्राव, ज्वर (Haemorrhage, Fever)	एकोनिटम, पल्सटिल्ला (Aconitum, Pulsatilla)
14.	अफ्रीकन सूकर ज्वर (African Swine Fever)	जुलाब, ज्वर, भूख न लगना (Diarrhoea, Fever, Anorexia)	एकोनिटम, पल्सेटिल्ला Aconitum, Pulsetilla
15.	(Rabies) रैबीज	तंत्रिका तंत्र क्षय, उत्तेजना (Nervous Symptoms, Excitation)	एकोनिटम, ब्रायोनिया, आर्सेनिकम (Aconitum, Bryonia, Arsenicum)
16.	स्यूडो रेबीज (Pseudorabies)	मांसपेशियों में कम्पन (Muscle Tremor, Incordination)	एकोनिटम, ब्रायोनिया, आर्सेनिकम (Aconitum, Bryonia, Arsenicum)
17.	पशु माता रोग (Pox Virus)	ज्वर, फुन्सी थन में, दुहान में दर्द (Fever. Pustule on teat, Pain on milking)	वैरिओलिनम+वैक्सीनिनम, एन्टीमोनियम क्रुडम (Variolinum+Vaccininum, Antimonium Crudum)
18.	पैपिलोमैटोसिस (Papillomatosis)	त्वचा पर मस्से (Out growth of epidermis)	थूजा, सेबिना, डल कामारा कैल्केरिया कार्बोनिका (Thuja, Sabina, Dulcamara, Calcarea carbonica
19.	ब्लू टंग (Blue Tongue)	नसिका श्राव, खूनी लार (Nasal discharge, Blood Stained Saliva)	एकोनिटम, बोरेक्स (Aconitum, Borax)
20.	भेड़ दिमागी बुखार (Ovine Encepnalo-myelitis)	तंत्रिका तंत्र क्षय मांसपेशी कमजोरी (Nervous sign muscle tremor)	बेलाडोना, चैमोमेल्ला (Belladonna, Chamomella)
21.	मैडी (Maedi)	दुबलापन कमजोरी (Loss of body condition, Weakness)	ब्रायोनिया, एकोनाइट ड्रोसेरा, लाइकोपोडियम (Bryonia, Aconite Drosera, Lycopodium)
22.	संक्रामक अश्व रक्ताल्पता (Equine Infectious Anaemia)	रक्ताल्पता, ज्वर (Anaemia, Fever)	चाइना, क्रोटालस (China, Crotallus)
23.	अफ्रीकन सूकर बीमारी (African swine sickness)	श्वसन तकलीफ (Respiratory distress)	कुचला, बेलाडोना, केमोमिला (Nux Vomica, Belladonna, Chamomella)
24.	अश्व दिमागी बुखार (Equine Encephalomyeletis)	ज्वर, लकवा (Fever, Paralysis)	एकोनाइट, नाक्स वोमिका, ब्रायोनिया, ड्रासेरा (Aconite, Nux vomica, Bryonia, Drosera.)
25.	अश्व फ्लू (Equine Influenza)	श्वसन में तकलीफ, ज्वर (Dyspnoea, Septicaemia)	एकोनाइट, मरक्यूरस, नक्स वोमिका, पोडोफाइलम (Aconit, Mercurius, Nux vomica, Podophyllun)
26.	संक्रामक कैनाइन हिपेटाइटिस	ज्वर, जुलाब (Fever, Diarrhoea)	एकोनिटम, मरक्यूरियस नक्स वोमिका (Aconitum,

	;Infectious canine		hepatitis mercurius, Nux vomica)
27.	परवो वाइरल संक्रमण (Canine paroviral disease)	आंत्रषोथ, हृदय शोथ (Enteritis, myocarditis)	एकोमाइट, पल्सेटिल्ला लैकेसिस (Aconite, Pulsetilla Lachesis)
28.	कोरोना वाइरस रोग (Canine corona virus disease)	पतले जुलाब (Watery diarrhoea)	एकोनेट, नाक्स वामिका पल्साटिल्ला (Aconete, Nuxvomica Pulsatilla
29.	कैनाइन डिस्टेम्पर (Canine distemper)	ज्वर, कम्पन (Fever , Tremor)	इग्नासिआ, बेलाडोना चामोमिला (Ignatia, Belladonna Chamomella)
30.	फेलाइन पैनल्यूकोपीनिया (Feline Panleucopenea)	निर्जलता, ज्वर (Dehydration, Fever)	नक्स वोमिका, पल्सेटिल्ला Nux vomica, Pulsatilla
31.	रानीखेत (Ranikhet Disease)	हरी जुलाब, खाँसी (Greenish diarrhoea, Coughing)	पल्सेटिल्ला, बैलाडोना कैमोमेला (Pulsatilla, Belladonna Chamomella)
32.	दिमागी बुखार (मुर्गी में) (Avian Encephalo-myelitis)	माँसपेशियों में कम्पन (Muscle tremor)	बैलाडोना, कैमोमेला, आर्निका (Belladona, Chamomela, Arnica)
33.	संक्रामक बर्सल डिजीज (Infectious bursal disease)	भूख न लगना, दस्त (Anoxexia,Diarrhoea)	नक्स वोमिका, पल्सेटिल्ला, फाइकस रेजिलोसा (Nux bomica, Pulsatilla Ficus Regilosa)
34.	मैरक्स रोगे (Marek's disease)	शरीर भार एवं अण्डा उत्पादन कम होना (Decrease growth rate & egg production)	हाइड्रेस्टिस, नक्स वोमिका (Hydrastis, Nux vomica)
35.	Avian leukosis comaplex (ALC)	आन्तरिक अंगो में ट्यूमर (Tumor of internal organ)	हाइड्रास्टिस, नक्सवामिका (Hydrostis, Nuxvomica)
36.	संक्रामक ब्रान्काइटिस ए.एल.सी. (Infectious Bronchitis)	खाँसी, छींक (Coughing, Sneezing)	स्पोन्जिया, एकोनिटम, ब्रायोनिया, बेलॉडोना Spongia, Aconitum Bryonia, Bellodona)
37.	संक्रामक लरेन्जोट्राइकाटिस (Infectious larangeotrachatis)	मुँह खोलकर स्वसन (Gaspings respiration)	स्पोन्जिया, ब्रायोनिया (Spongia, Bryonia)

कवक जनित रोग

(Fungal Diseases)

क्र.सं.	नाम (Name)	लक्षण (Symptoms)	उपचार (Treatment)
1.	कॉक्सीडियोडोमाइकोसिस (Coccidiodomycosis)	खाँसी, लंगड़ापन, जोड़ो में सूजन, बुखार (Cough, Lameness, Enlarged joint, Fever)	नक्सवोमिका, एकोनाइट, पल्सटिल्ला (Nux vomica, Aconite Pulsatilla)
2.	एस्परजिल्लोसिस (Aspergillosis)	स्वांस अवरोध, कमजोर होना अत्यधिक प्यास लगना (Dyspnea, Emaciation, Increased thirst)	नक्स वोमिका, एकोनाइट, ब्रायोनिया, पल्सेटिल्ला (Nux vomica, Aconite, Bryonia, pulsatilla)
3.	नोकार्डियोसिस (Nocardiasis)	लसिकावाहिनी और लसिकाग्रन्थियों में सूजन (Lymphadinitis)	हेक्लालावा, एसिडफ्लोर कालीहाइड्रोइडिकम (Heclalava Acid Flour, Kalihydroiodicum)
4.	रिंग वर्म (Ring worm)	वृत्ताकार घाव (Lesion grow peripherally and with central healing)	बैसिलिनिम, टेलुरियम, नैट्रमसल्फ (Bacillinum, Tellurium, Natrum sulph)
5.	फेवस (Favus)	चमड़ी का मोटा होना तथा केराटिन का अत्यधिक जमाव (Hyperplasia and Hyperkeratosis of epidermis)	एकोनिटम, रसटॉक्स, मरक्यूरिस, आर्सेनिकम (Aconitum, Rhus tox, Mercurius Arsenicum)

❑❑❑

पंतनगर विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित किसानोपयोगी मासिक पत्रिकाऐं

किसान भारती

सदस्यता शुल्कः

वार्षिक : ₹ 150

5 वर्ष : ₹ 675

10 वर्ष : ₹ 1200

15 वर्ष : ₹ 1800

प्रकाशित होने वाले लेख

- ❖ कृषि एवं कृषि के विभिन्न आयाम
- ❖ औषधीय खेती
- ❖ मशरूम उत्पादन
- ❖ फल–फूल उत्पादन
- ❖ पशु पालन
- ❖ मुर्गी पालन
- ❖ मत्स्य पालन

पत्रिका का शुल्क **नियंत्रक, गोविन्द बल्लभ पन्त कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, पंतनगर** के नाम बना बैंक ड्राफ्ट जो स्टेट बैंक (कोड 1133)/यूको बैंक (कोड 678)/पी0 एन0 बी0 (कोड 4446), पंतनगर पर देय हो, अथवा मनीआर्डर द्वारा **व्यवसाय प्रबंधक, गो0 ब0 पंत कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, पंतनगर–263145** को भेजकर सदस्यता ग्रहण की जा सकती है। चैक से चन्दा स्वीकार्य नहीं है।

Indian Farmers' Digest

Subscription rates

1 year - 150

5 year - 675

10 year - 1200

15 year - 1800

regularly for research-based articles on agriculture development from all-over the country.

Address :

Business Manager
G.B. Pant University of Agri. & Tech., Pantnagar-263145
(U.S. Nagar), Uttranchal, India

The amount on account of Subscription may please be sent by demand Draft drawn in favour of Comptroller, G.B. University of Agriculture & Technology, Pantnagar, U.S.Nagar, Uttranchal,263145 and payable at STATE BANK OF INDIA, (Code no. 1133)/UCO BANK (Code no. 678)/ PNB (Code no. 4446) Pantnagar. Money order & Demand draft must be sent to the Business Managar. Subcription through Cheque is NOT ACCEPTABLE. While sending money, please give you full details and compleate postal address.

कृषि प्रौद्यौगिकी सूचना केन्द्र, पन्तनगर

पर

कृषकों को उपलब्ध सुविधायें

कम्प्यूटर क्योस्क द्वारा नवीनतम कृषि सम्बन्धी जानकारी

- कम्प्यूटर स्क्रीन को स्पर्श मात्र से ही कृषि की जानकारी पढ़कर, सुनकर व देखकर प्राप्त की जा सकती है।

उत्पादों की बिक्री

- फसल व सब्जी के प्रजनक/मिनी किट बीज
- कृषि सम्बन्धी साहित्य की बिक्री
- किसान भारती एवं इण्डियन फार्मर्स डाइजेस्ट मासिक पत्रिकाओं की सदस्यता

हेल्प लाइन सेवा

- समय : प्रत्येक कार्यदिवस पर (प्रातः 9.30 से दोपहर 1.00 बजे)
- फोन नम्बरः 05944–234810/235580 (पन्तनगर हेल्पलाइन सेवा) 1551 (भारत सरकार के किसान काल सेन्टर)
- उपलब्ध : कृषकों के कृषि एवं कृषि से सम्बधित विभिन्न जानकारी आयामों– पशु पालन, मछली पालन, कुक्कुट पालन, केचुआं पालन, फल एवं सब्जी उत्पादन, मशरूम उत्पादन, कृषि यन्त्रों का रखरखाव आदि के प्रश्नों का उत्तर

अधिक जानकारी हेतु – सम्पर्क सूत्र

निदेशक प्रसार शिक्षा

गोविन्द बल्लभ पंत कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय

पंतनगर – 263 145, जिला – ऊधम सिंह नगर, (उत्तराखण्ड)

फोन – 05944-233336

फैक्स – 05944-233473

प्रसार शिक्षा निदेशालय के अन्तर्गत कृषि विज्ञान केन्द्र

कृषि विज्ञान केन्द्र	मो.नं.	Qks ua(O)
1. डा. जितेन्द्र क्वात्रा कार्यक्रम समन्वयक कृषि विज्ञान केन्द्र, काशीपुर जनपद–ऊधम सिंह नगर	9760226518	05947–262281 262771 262281 (F)
2. डा. वी.के. दोहरे कार्यक्रम समन्वयक कृषि विज्ञान केन्द्र, ज्योलीकोट जनपद–नैनीताल	7500241504	05942–224547 224113 (F)
3. डा. एम.पी. सिंह प्रभारी अधिकारी कृषि विज्ञान केन्द्र, लोहाघाट जनपद–चम्पावत	9412925543	05965–234820
4. डा. एस.एस. सिंह कार्यक्रम समन्वयक कृषि विज्ञान केन्द्र, मटेला जनपद–अल्मोड़ा	8475001596	05962–241248 221074 (F)
5. श्री अनिल पंवार प्रभारी अधिकारी कृषि विज्ञान केन्द्र, ग्वालदम जनपद–चमोली	9837458381	01363–274287 274287 (F)
6. डा. पुरूषोत्तम कुमार प्रभारी अधिकारी कृषि विज्ञान केन्द्र, धनौरी जनपद–हरिद्वार	8475002233	01332–215442 248483 (F)
7. डा. ए.के. शर्मा कार्यक्रम समन्वयक कृषि विज्ञान केन्द्र, ढ़करानी जनपद–देहरादून	9410756918	01360–224378 259563 (F)
8. डा. संजय सचान प्रभारी अधिकारी कृषि विज्ञान केन्द्र, जाखधार जनपद–रूद्रप्रयाग	9450410994	–
9. डा. निर्मला भट्ट प्रभारी अधिकारी कृषि विज्ञान केन्द्र, गैना–एंचोली जनपद–पिथौरागढ़	9412044788	05964–252175 225104 (F)

नोट बुक